

वर्ष १९५८ में भूतपूर्व प्रधानमंत्री पं० जवाहरलाल नेहरू गुरुकुल संग्रहालय का अवलोकन करते हुए। पं० हरिदत्त वेदालंकार तथा आचार्य प्रियव्रत संग्रहालय का परिचय दे रहे हैं।

प्रह्लाद

(प्राच्यविद्याओं की त्रैमासिक शोध-पत्रिका)

सम्पादक

डा० विष्णुदत्त राकेश

पी-एच डी, डी. लिट्.

प्रोफेसर तथा अध्यक्ष, हिन्दी-विभाग

सयुक्त-सम्पादक

डा० बिनोदचन्द्र सिन्हा

एम०ए०, पी-एच०डी०

प्रोफेसर तथा अध्यक्ष

प्राचीन भारतीय इतिहास, सस्कृति एव पुरातत्व

जौलाई से सितम्बर—१९८७

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

प्रधान संरक्षक

श्री रामचन्द्र शर्मा

आई०ए०एस० (सेवानिवृत्त)

कुलपति

संरक्षक

श्री रामप्रसाद वेदालंकार

आचार्य एवं उप-कुलपति

प्रकाशक

डा० वीरेन्द्र अरोड़ा

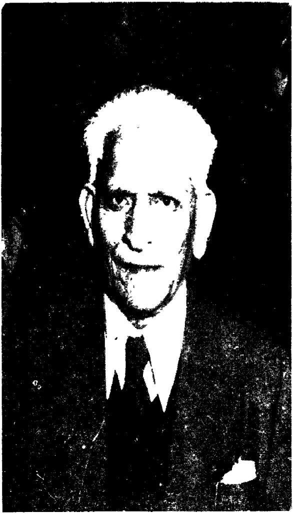
कुलसचिव

व्यवस्थापक

जगदीश विद्यालंकार

पुस्तकालयाध्यक्ष

* विषय सूची *



विश्वविद्यालय के नव-नियुक्त परिद्रष्टा श्री सोमनाथ जी मरवाहा
(वरिष्ठ अधिवक्ता : उच्च न्यायालय)

वैदिक वन्दना

ॐ यज्ञं यन्तं मनसा बृहन्तम्
अन्वारोहामि तपसा सयोनिः ।
उपहूता: अग्ने जरस: परस्तात्
तृतीये नाके सधमादं मदेम ।

अथर्व ६, १२२,४

शब्दार्थ— (बृहन्तम्) महान् (यज्ञम्) यज्ञ में (यन्तम्) जाते हुए, विद्वानो के साथ (तपसा) तपस्या से (सयोनिः) सगोत्र, समान शक्तिसम्पन्न, (मनसा) मन से (अन्वारोहामि) यज्ञभूमि में चढता हूँ। (अग्ने) हे अग्निदेव (उपहूता:) आपके द्वारा आमंत्रित हम (जरस: परस्तात्) वृद्धावस्था के पश्चात्, इस शरीर के त्याग देने के बाद, (तृतीये नाके) सर्वोच्च मुक्तिपद में (सब दुःखों से रहित स्वर्ग में), (सधमादम्) साथ प्रसन्नतापूर्वक रहते हुए (मदेम) आनन्द का अनुभव करें।

हिन्दी अर्थ–महान् यज्ञ मे जाते हुए विद्वानों के साथ, तपस्या से समान शक्तिवाला, मैं मन से यज्ञभूमि मे जाता हूँ। हे अग्निदेव ! आपके द्वारा आमंत्रित हम वृद्धावस्था के पश्चात् (शरीरत्याग कर) परममुक्तिधाम में साथ ही प्रसन्नतापूर्वक रहते हुए आनन्दित हों।

—डा० कपिलदेव द्विवेदी

यज्ञ हेतु जाने वाले शिवसंकल्पी बुधजन के साथ,
तप-समता सम्पन्न लिए मन पकडूँ अग्निदेव का हाथ,
देहाध्यास छोड आत्मा की यज्ञभूमि पर गमन करूँ,
उस सर्वोच्च मुक्तिपद मे रसरूप ब्रह्म में रमण करूँ।

—डा० विष्णुदत्त राकेश

सम्पादक की कलम से—

८७वाँ दीक्षान्त

१४ अप्रैल '८७ को विश्वविद्यालय का दीक्षान्त समारोह विश्वविद्यालय भवन में सम्पन्न हुआ। कुलपति श्री रामचन्द्र शर्मा ने विश्वविद्यालय का प्रगति-विवरण प्रस्तुत करते हुए शिक्षाप्रसार तथा शोध के क्षेत्र मे अर्जित उपलब्धियो पर प्रकाश डाला। उन्होने कहा—"गुरुकुल प्रणाली वर्तमान परिप्रेक्ष्य मे राष्ट्रीय अखण्डता, समाजसेवा, मानवजाति की एकता, विश्वव्यापी प्रेम, चरित्रनिर्माण, आत्मानुशासन, सामाजिक तथा लोकतान्त्रिक न्याय, सामूहिक कार्यचेतना, ज्ञान की खोज तथा प्रसार जैसे उद्देश्यो की पूर्ति मे सहायक हो सकती है। गुरुकुल के ब्रह्मचारी व्रताभ्यास, योगाभ्यास तथा आत्मानुशासन से बल ग्रहण करके ही राष्ट्रीय जीवन मे योगदान कर सकते है।"

दीक्षान्त-भाषण उत्तर प्रदेश के मुख्यमन्त्री माननीय श्री वीरबहादुर सिंह ने किया। गुरुकुल के महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए मुख्यमन्त्री जी ने कहा – 'गुरुकुल कांगडी की स्थापना स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज ने महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा प्रतिपादित शिक्षानीति के आधार पर की थी। धर्म एवं देश की रक्षा तथा समाजसुधार के लिए स्वामीजी ने अपना सम्पूर्ण जीवन समाज को समर्पित कर दिया था। गुरुकुल खोलने मे उनका उद्देश्य एक ऐसी संस्था की स्थापना करना था जहाँ विद्यार्थियो का चरित्र-निर्माण हो, शांति एवं पवित्र वातावरण मे शिक्षा ग्रहण कर सकें, प्राच्य एवं आधुनिक ज्ञान-विज्ञान के विषयो का अध्ययन करें तथा भारतीय संस्कृति के पोषक बनकर समाज-कल्याण पर चिंतन करें। गुरु-शिष्य परम्परा मे छात्रगण आश्रम मे रहकर गुरु के गुण को ग्रहण कर चरित्रवान् एवं उत्तम नागरिक बनें। मुझे प्रसन्नता है कि गुरुकुल ने अपना यह लक्ष्य बहुत दूर तक पूरा किया है।' शिक्षा के उद्देश्य की पूर्णता तभी है जब व्यक्ति मे ज्ञान-वृद्धि के साथ-साथ व्यक्तिगतगुणो मे भी अभिवृद्धि हो और उसमे सामाजिक दायित्व के निर्वाह तथा अर्थोपार्जन की अपेक्षित क्षमता का विकास हो। अब समय आ गया है कि देश, काल एवं परिस्थिति को दृष्टिगत रखते हुए शिक्षापद्धति मे बुनियादी परिवर्तन लाया जाए। मैकाले की शिक्षापद्धति, जिसका उद्देश्य अंग्रेजी सरकार के कामकाज के लिए 'बाबू' तैयार करना मात्र था, अब हमारे स्वतन्त्र राष्ट्र के लिए अधिक उपयोगी नही रह गई है। अब यह देश अंग्रेजो का नही, हमारा है, आपका, हम सबका है। अब शिक्षा के वर्तमान ढांचे मे आमूल परिवर्तन की आवश्यकता और इसे समाज एवं व्यक्ति के लिए उपयोगी बनाया जाना चाहिए। स्वतन्त्रता के पूर्व महात्मा गांधी ने हमे शिक्षा के

सम्बन्ध मे एक नई दिशा दी थी और बुनियादी शिक्षा के रूप मे उन्होंने बुनियादी दस्तकारियो के माध्यम से शिक्षा देने के सिद्धान्त को प्रतिपादित कर भारतवासियों को स्वावलम्बन एवं आत्मनिर्भरता का पाठ पढाया था। स्वतन्त्रता के बाद पण्डित जवाहरलाल नेहरू तथा श्रीमती इन्दिरा गाँधी ने शिक्षा को देश की बदलती हुई आवश्यकताओ से जोडा और अब श्री राजीव गाँधी ने शिक्षा को राष्ट्रीय एकता और विकास से सम्बद्ध करने पर बल दिया है तथा शिक्षा को नई दिशा दी है। इन प्रयासो से ही शिक्षा के इस नये प्रारूप मे सम्पूर्ण देश मे शिक्षा की दिशा एक होगी और समाज के योग्य तथा प्रतिभासम्पन्न व्यक्ति, चाहे वे किसी कमजोर वर्ग के या किसी जाति के क्यो न हो, सभी अपनी योग्यतानुसार अच्छी से अच्छी शिक्षा प्राप्त करने के अधिकारी होगे। हमे चाहिए कि एकजुट होकर सत्यनिष्ठा एव अटूट लगन से कठिन परिश्रम करके राष्ट्र के विकास मे सतत् योगदान देते रहे। नैतिक मूल्यो को जीवन मे उतारें तथा अपने व्यक्तिगत दायित्वो के साथ-साथ अपने सामाजिक कर्त्तव्यो को भी पूरा करें।

मुख्यमन्त्री जी ने इस अवसर पर पुस्तकालय के लिए ७ लाख रुपये तथा सग्रहालय के लिए १ लाख रुपये का विशेष अनुदान देने की घोषणा की। परिसर मे विशाल स्पोर्ट्स स्टेडियम बनवाने की घोषणा वह पहले ही कर चुके थे। कुलपति श्री रामचन्द्र शर्मा ने मुख्यमन्त्री जी को कुलवासियो तथा इस अवसर पर पधारे शिष्टपरिषद्, कार्यपरिषद्, शिक्षापटल के मान्य सदस्यो तथा श्रद्धालु आर्यजनो की ओर से धन्यवाद दिया तथा आशा व्यक्त की, कि मुख्यमन्त्री जी इन घोषणाओ की पूर्ति यथाशीघ्र करायेगे।

विश्वविद्यालय के कुलाधिपति तथा सुप्रसिद्ध इतिहासकार डा० सत्यकेतु विद्यालकार ने दीक्षान्तसमारोह की अध्यक्षता की। डा० वीरेन्द्र अरोडा, कुलसचिव ने कार्यक्रम का सफल सचालन किया।

विश्वविद्यालय के नये परिद्रष्टा

विश्वविद्यालय के कुलसचिव डा० वीरेन्द्र अरोडा द्वारा दी गई सूचना के अनुसार विश्वविद्यालय की शिष्टपरिषद् ने अपनी एक बैठक मे आर्यसमाज के कर्मठ नेता, विधिविशेषज्ञ और उच्च न्यायालय के वरिष्ठ अधिवक्ता श्री सोमनाथ जी मरवाह को विश्वविद्यालय के नए परिद्रष्टा के रूप मे सर्वसम्मति से चुन लिया है। अभी तक इस पद पर गुरुकुल के यशस्वी स्नातक तथा सुप्रसिद्ध वैदिक विद्वान् डा० सत्यव्रत सिद्धान्तालकार कार्यरत थे। उनका कार्यकाल समाप्त हो गया था। उनके स्थान पर श्री मरवाह के नाम का प्रस्ताव आर्यसमाज की सार्वदेशिक सभा के प्रधान स्वामी आनन्दबोध सरस्वती ने किया था। श्री मरवाह सभा के कोषाध्यक्ष भी हैं। इससे पूर्व श्री मरवाह विश्वविद्यालय के नि शुल्क कानूनी सलाहकार रहे हैं। हर सकट की घडी मे विश्वविद्यालय

की रक्षा के लिए उनकी सेवाएँ उपलब्ध रही हैं। १९७७ से १९८० तक के सघर्ष और उसके बाद के समय मे गुरुकुल को व्यवस्थित, विकसित तथा उन्नत करने मे उन्होने कोई कसर उठाकर नही रखी। वे गुरुकुल के साथ अभिन्न हैं तथा प्रयत्नशील है कि गुरुकुल ज्ञान-विज्ञान के प्रचार-प्रसार के साथ वैदिकधर्म तथा आर्यसमाज के लिए भी उपयोगी सिद्ध हो।

आचार्य गोवर्धन शास्त्री पुरस्कार

गुरुकुल कागडी के प्रारम्भिक आचार्यो मे एक तथा हिन्दी मे भौतिक विज्ञान तथा रसायन विज्ञान पर पुस्तके लिखने वाले आचार्य गोवर्धन शास्त्री १९१४ मे गुरुकुल छोडकर दिल्ली के रामजस हाईस्कूल मे मुख्याध्यापक हो गए थे। १९०५ मे लाहौर से आपने बी०ए० किया तथा स्वामी श्रद्धानन्द जी के अनुरोध पर गुरुकुल आ गए। १९१८ मे आपने सस्कृत मे एम० ए० तथा १९२२ मे एम० ओ० एल० तथा शास्त्री की परीक्षाएँ उत्तीर्ण की। 'वेदो का अनादित्व' पुस्तक लिखकर आपने वेदो की प्राचीनता और प्रामणिकता पर गम्भीर प्रकाश डाला। पाकिस्तान के डेरा गाजीखान जनपद के ताशाशरीफ गाव मे वेद-प्रचार के केन्द्र के रूप मे आपने सघड वर्नाकुलर हाईस्कूल की स्थापना की। यहाँ से वह पश्चिमी सीमाप्रात मे आर्यसमाज व आर्यधर्म का प्रचार करने का अभियान चलाना चाहते थे। आपके सुपुत्र श्री बलभद्रकुमार हूजा गुरुकुल के कुलपति रहे तथा विश्वविद्यालय को आत्मनिर्भर बनाने मे आपने अविस्मरणीय योगदान किया। सघड विद्या सभा ट्रस्ट जयपुर ने आर्यसमाज, साहित्य, शिक्षा, समाजसेवा तथा प्रचारकार्य के लिए शास्त्री जी की स्मृति मे एक पुरस्कार की प्रतिष्ठा की है। इसमे प्रशस्तिपत्र, उत्तरीय तथा एक सहस्र रुपये सम्मान-राशि के रूप मे उक्त कार्यो के लिए किसी व्यक्ति को प्रतिवर्ष समर्पित किए जाते है। १९८१ मे पहला पुरस्कार प्रो० रामप्रसाद वेदालकार, उपकुलपति गुरुकुल कागडी को दिया गया। अब तक क्रमश पुरस्कार के विजेता डा० भवानीलाल भारतीय, पण्डित विश्वनाथ, विद्यामार्तण्ड पण्डित सत्यकाम विद्यालकार, वेदमार्तण्ड पण्डित भगवद्दत्त वेदालकार, वेदमार्तण्ड आचार्य प्रियव्रत, शतायु हिन्दी-लेखक श्री सतराम बी० ए० रहे हैं। इस वर्ष का पुरस्कार वेदमनीषी डा० सत्यव्रत सिद्धान्तालकार, शिक्षाशास्त्री श्री दत्तात्रेय बावले तथा समाजसेवी लाला चेतनदास (मरणोपरात) को दिया गया है। डा० सत्यव्रत जी वेदो के उद्भट् विद्वान् है। उन्होने दर्शन, धर्म, शिक्षा, समाजशास्त्र, मानवशास्त्र, योग तथा होमियोपैथी पर हिन्दी, अग्रेजी मे उच्चकोटि के मौलिक ग्रन्थो की रचना की है। उनके गीताभाष्य की प्रशसा श्री लाल बहादुर जी शास्त्री तथा श्री जयप्रकाश नारायण और उपनिषद्भाष्य की प्रशसा डा० राधाकृष्णन जैसे विश्वविख्यात विद्वानो ने की है। श्री दत्तात्रेय बावले डी० ए० वी० कालेज अजमेर के प्राचार्य रहे है। आपके प्रयत्नो से ही ऋषि दयानन्द और आर्यसमाज के कार्य को बढावा देने के लिए दयानन्द कालेज मे दयानन्द शोधपीठ की स्थापना हुई है। पद्मभूषण डा० सूरजभान आपके कालेज को 'लघु विश्वविद्यालय' कहते थे। आपकी

शैक्षिक तथा साहित्यिक सेवाओ के लिए १९७१ मे तत्कालीन उपराष्ट्रपति डा० गोपाल स्वरूप पाठक की अध्यक्षता मे आपका सार्वजनिक अभिनन्दन किया गया था। विरजानन्द स्कूल आदि १३ शिक्षणसस्थाएँ खोलकर तथा भारतीय रेडक्रास समिति जिला शाखा अजमेर के अध्यक्ष के रूप मे निर्धन, पिछडे एव दलित वर्गो के कल्याण के लिए अनेक योजनाएँ क्रियान्वित कर आपने प्रशसनीय सेवाएँ की है।

लाला चेतनदास जालन्धर के निष्काम समाजसेवी रहे और वर्षो तक सघड सभा के साथ सलग्न होकर उन्होंने उल्लेखनीय सेवाएँ की। इन तीनो महानुभावो को 'आचार्य गोवर्धन शास्त्री पुरस्कार' से सम्मानित कर सघड सभा ने आदर्श कार्य किया है। १९ अप्रैल '८७ को तालकटोरा गार्डन दिल्ली मे विश्वविद्यालय के कुलपति श्री रामचन्द्र शर्मा ने तथा श्री बलभद्रकुमार हूजा ने पुरस्कार समर्पण का कार्य किया। महात्मा हसराज दिवस समारोह पर प्रदत्त इन पुरस्कारो का उपस्थित शिक्षाविद्, साहित्यकार तथा आर्यबन्धुओ ने करतल ध्वनि से समर्थन किया।

शोषितजन की ऊर्जा और मनुष्य के भीतर की प्रेम-लौ के साधक
कवि केदारनाथ अग्रवाल सम्मानित

२३ फरवरी १९८७ को साहित्य अकादमी ने हिन्दी कवि केदारनाथ अग्रवाल को उनकी रचना 'अपूर्वा' के लिए पुरस्कृत किया। अग्रवाल जी का जन्म १९११ मे बाँदा जिले के कमासिन गाँव मे हुआ। प्रयाग और आगरा विश्वविद्यालय से बी० ए० तथा एल-एल० बी० की परीक्षाएँ उत्तीर्ण की। निराला और डा० रामविलास जी से निकटतम सम्पर्क रहा। हिन्दी के प्रगतिशील आन्दोलन से सक्रियरूप से जुडे तथा हँस और नया साहित्य मे नियमित लिखते रहे। प्रगतिवादी दृष्टि तथा उद्बोधनात्मक शैली प्रारम्भिक रचनाओ मे अधिक दिखाई पडती है। भाषाशैली और छन्दविधान सहज और व्यावहारिक है। प्रकृति के क्षेत्र मे बिखरा जीवन-उत्साह उनके सामने था। गाँव, खेत, खलिहान, नदी, नाले, आस-पास का परिवेश और जनसकुलता उन्हे आकृष्ट कर रही थी। तीखी व्यक्तिगत सवेदना और सामाजिक पीडा का उन्होंने खुलकर अनुभव किया था। १९४७ मे उनके दो काव्यसकलन 'नींद के बादल' तथा 'युग की गगा' नाम से प्रकाशित हुए। नीद के बादल सग्रह की रचनाओ मे प्रेम का ज्वार था, सौन्दर्य की गरमाहट थी और थी कविप्रिया की गधवर्णी सवेदनाएँ। उनकी रचनाओ मे पर-नारी की मूर्ति नहीं, उनकी पत्नी श्रीमती पार्वती देवी की दाम्पत्य-छवि है। यह यथार्थ से उपजी है, इसे उन्होने प्रिया-प्रियबद नाम दिया है, यह कहते हुए—

> है न उतना गीत मे रस
> है न इतना काव्य में रस,
> रूप में जितना तुम्हारे
> प्राणप्यारी है भरा रस।

'युग की गगा' मे प्रगतिवादी रचनाएँ सकलित है। वर्ग-वैषम्य, शोषित जीवन की सवेदना और आभिजात्य की विसगति इन रचनाओ मे फूट पडी है। छायावादी भाषा का कुहरा छाँटने वाले तथा मानवसभ्यता के ऐतिहासिक विकास मे आस्था रखने वाले प्रगतिशील कवियो मे केदार जी महत्वपूर्ण हैं। जनजीवन मे सौन्दर्य की खोज करते-करते, मानवघाती परम्पराओ पर प्रहार करते-करते और नवयुग की आकाक्षाओ की पूर्ति करते-करते वह मानवतावादी हो गए है। निरुद्देश्य क्रान्ति उनके पास नही, आग्रहबद्ध जड़ता वहाँ फटकती नही, जनविश्वास और सामाजिकसम्बन्धो को उभारना ही उनका लक्ष्य है। लोकसपृक्ति उनकी कविता की प्रमुख पहचान है। चित्रकूट कविता की कुछ पक्तियाँ यहाँ इस आशय से उद्घृत है, जिनमे धार्मिक रूढियो पर व्यग्य किया गया है—

चित्रकूट के बौड़म यात्री
सतुआ, गुड़ गठरी में बाँधे
गठरी को लाठी पर साधे,
लाठी को काँधे पर टाँगे,
दिन भर अधरम करने वाले
पर नर को ठगने वाले
पर सम्पति को हरने वाले।

स्वय कवि के शब्दो मे—'युग की गगा मे समाज की अर्थनीति के विरुद्ध प्रहार है, कटुजीवन का व्यग्य है, प्रकृति का किसानी चित्रण है। जिंदगी की भीड की इन कविताओ मे *जनता के मोर्चे की प्रतिध्वनि है।'*

केदार जी की अन्य रचनाएँ है—फूल नही रग बोलते है, आग का आईना, समय-समय पर, लोक-आलोक, बोले-बोल अबोल तथा अपूर्वा। केदार जी के दीर्घजीवी होने के लिए अनेक मगलकामनाएँ।

संस्कृतव्याकरण का एक स्तम्भ गिरा

९० वर्ष की परिणत वय तक निरन्तर सस्कृत भाषा और व्याकरण पर चिन्तन, मनन और लेखन का कार्य करते रहने वाले विद्वान् पण्डित चारुदेव शास्त्री का निधन हो गया। सन् १९७१ मे उन्हे राष्ट्रपति सम्मान मिला था। दिल्ली सस्कृत साहित्य सम्मेलन की स्वर्ण-जयन्ती के अवसर पर डा० राधाकृष्णन जी ने उन्हे विद्यावाचस्पति की उपाधि से अलकृत किया था। जीती-जागती सरल सस्कृत लिखने-पढने की वह सदैव प्रेरणा देते रहे। उन्होने स्वय सस्कृतव्याकरण को महाभारत, काव्य, नाटक आदि के प्रयोगो से जोडकर रोचक बनाया। वह सस्कृतव्याकरण को सर्जना की सजीव भाषा से जोडने के पक्षधर थे। पाँच खण्डो मे लिखा उनका व्याकरण चन्द्रोदय ग्रन्थ इस कथन की पुष्टि

करता है। व्याकरणिक प्रयोग और शिष्ट प्रयोगो की महत्ता उन्होने समझाई। संस्कृत के पुराने मुहावरो की विशेषता बताते हुए संस्कृत के मानकरूप की व्याख्या शास्त्री जी ने अपने ग्रन्थों मे की। शब्दापशब्द विवेक, वाक्यमुक्तावली और वाग्व्यवहारादर्श उनकी ऐसी पुस्तकें है। गाँधिचरित की भाषा देखकर आप मुग्ध हो उठेंगे। इसमे गाँधी जी के समसामयिक समस्याओ पर लिखे भाषणो और पत्रो का बोलचाल के अदाज मे संस्कृत अनुवाद है। पतजलि के महाभाष्य के ६ आह्निको का हिन्दी अनुवाद कर तथा कैयट और नागेश के मन्तव्यो का सरल हिन्दी मे व्याख्यान कर, हिन्दीविद्वानो का मार्ग साफ किया। भर्तृहरि के वाक्यपदीय के भाषाशास्त्रीय अध्ययन की ओर विद्वानो का ध्यान उन्होंने ही आकृष्ट किया था। संस्कृतअध्यापन की वैज्ञानिक तथा सरस शैली का भी आविष्कार शास्त्री जी ने किया था। उनका 'उपसर्गार्थ चन्द्रिका' ग्रन्थ व्याकरण के क्षेत्र मे अभूतपूर्व है क्योकि इसमे उपसर्गो के उदाहरण विशाल संस्कृत वाग्मय से एकत्र किए गए हैं। व्याकरण और व्यवहार को एक साथ रखकर संस्कृतशब्दो के विश्लेषण की गभीर क्षमता शास्त्री जी मे थी। संस्कृत के ऐसे ऋषितुल्य विद्वान् के निधन से हुई अपार क्षति की पूर्ति असभव है। उनकी स्मृति को प्रणाम।

अरे यायावर रहेगा याद !

हिन्दी के अन्तर्राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त कवि श्री सच्चिदानद वात्स्यायन अज्ञेय का निधन हो गया। उनके भतीजे सिद्धार्थ वात्स्यायन, प्रसिद्ध लेखक शील काफ निगम, कवि-सम्पादक केशव मलिक तथा प्रोफेसर मानसमुकुल दास उनके अस्थिअवशेष लेकर हरिद्वार पधारे। मुझे इस अवसर पर स्वर्गीय कवि की एक कविता स्मरण हो आई और उसे मैने श्रद्धाजलि के रूप मे पढा—

मै मरूँगा सुखी,
क्योंकि तुमने जो जीवन दिया था,
उससे मैं निर्विकल्प खेला हूँ,
खुले हाथों मैंने उसे वारा है,
मैं मरूँगा सुखी
मैंने जीवन की धज्जियाँ उड़ाई हैं।

आज अज्ञेय नही है, पर जीवन के प्रति उनका अनासक्त लगाव मुझे उनकी सतत् उपस्थिति का आभास दे रहा है। पेड पर वह बालको के घरोदे जैसा घोसला बना रहे थे। उसमे कविता सुनाने वाले थे पर चिडिया की कहानी बन गया उनका जीवन। 'अरी ओ करुणा प्रभामय' की ये पक्तियाँ चरितार्थ हो उठी—

उड़ गई चिड़िया,
काँपी, फिर,
थिर
हो गई पत्ती।

किसी डाल से चिडिया के उड जाने पर पत्ती काँपती है और फिर धीरे-धीरे स्थिर हो जाती है जैसे कुछ हुआ ही न हो, निस्पद और निर्विकार। इसी तरह जीवन की चिडिया ससार के उपवन से उड जाती है, परिवार मे हलचल होती है और फिर सब कुछ शात हो जाता है। ससार का कार्य पूर्ववत् चलने लगता है। पर क्या अज्ञेय का चला जाना एक छोटे-से क्रियाव्यापार तक सीमित रहेगा ? उनके उड जाने पर क्या साहित्यिको का मनरूपी पत्ता काँप कर फिर सहज स्थिर हो जाएगा। नही, यह रिक्ति कभी भरेगी नही। अज्ञेय हिन्दी-वाटिका की 'हरी घास पर क्षणभर' बैठने के लिए भले ही आए हो पर वह 'बावरा अहेरी' जिसने 'इन्द्रधनुष रौंदे हुए' देखकर भी 'इत्यलम्' नहीं समझा, बराबर याद आता रहेगा। उन्होंने अपने कविजीवन को स्वय प्रतीक देते हुए कहा था—'अरे यायावर रहेगा याद'।

अज्ञेय का जन्म ७ मार्च १९११ को देवरिया के कसया स्थान पर हुआ। उनके पिताश्री हीरानद शास्त्री पुरातत्त्ववेत्ता थे। कुशीनगर या कसया मे बीता अज्ञेय का बचपन। उनका अन्तर्मन श्रमणसस्कारो से भरा था, उसमे शिशु बुद्ध का आलोक ठहर गया था और बाद मे जब वह फ्रास गए तो इसी भाव के कारण वह 'पियेर द क्ववीर' ईसाई मठ मे ठहरे। अज्ञेय जी ने १९२९ मे फॉरमन कालेज लाहौर से बी०एस-सी० की परीक्षा उत्तीर्ण की। अग्रेजी, सस्कृत, बगला पर उनका पूर्ण अधिकार था। उनका सम्पर्क क्रातिकारियो से भी रहा। हिन्दुस्तान समाजवादी प्रजातन्त्र सेना के सदस्य रहे। भगतसिह, चन्द्रशेखर आजाद, सुखदेव तथा भगवतीचरण बोहरा से उनका परिचय बढा। भगतसिह को छुडाने के लिए बम बनाने का कार्य शुरु किया। १५ नवम्बर १९३० को गिरफ्तार कर लिए गए। १९३६ तक उनका जीवन यातनाओ और सघर्ष मे बीता। क्राति तब उनके जीवन और रचनाओ मे रच-पच गई थी। इत्यलम् मे उन्होने कहा—

तुम जो महलों मे बैठे दे सकते हो आदेश,
मरने दो बच्चे, ले आओ खींच पकडकर केश,
नहीं देख सकते निर्धन के घर दो मुट्ठी धान,
सुनो तुम्हे ललकार रहा हूँ, सुनो घृणा का गान।

सैनिक, विशाल भारत, प्रतीक, दिनमान, नवभारत जैसी पत्रिकाओ का सम्पादन कर अज्ञेय ने न केवल आजादी की लडाई का शिविर लगाया अपितु देश-विदेश की राजनीतिक, सास्कृतिक और साहित्यिक रपट तैयार करवाने मे हिन्दी को विश्वभाषा का रूप देने का उद्यम किया। शब्दो को गढा और दृश्य-श्रव्य के माध्यम के रूप मे हिन्दी की विश्वसनीयता बढाई। १९५५ मे यूनेस्को के निमन्त्रण पर यूरोप गए तथा विश्व के बडे कवि-लेखको से मिले। १९६१ मे केलिफोर्निया मे भारतीय सस्कृति और साहित्य के प्रोफेसर नियुक्त हुए तथा फिर रूमानिया, युगोस्लाविया, रूस, मगोलिया, जापान, आस्ट्रेलिया की यात्रा कर भारतीय साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन किया। जोधपुर विश्वविद्यालय मे



दीक्षान्त-समारोह पर यज्ञ करते हुए माननीय वीरबहादुर सिंह, मुख्यमन्त्री उत्तर प्रदेश, कुलाधिपति डा० सत्यकेतु विद्यालंकार, कुलपति श्री रामचन्द्र शर्मा, आचार्य प्रो० रामप्रसाद वेदालंकार तथा कुलसचिव डा० वीरेन्द्र अरोड़ा।



दीक्षान्त-समारोह, दाएँ से—कुलसचिव श्री वीरेन्द्र अरोडा, कुलपति श्री रामचन्द्र शर्मा से विचार-विमर्श करते हुए। कुलाधिपति डा० सत्यकेतु विद्यालंकार तथा मुख्यमन्त्री उत्तर प्रदेश, माननीय श्री वीरबहादुर सिंह जी (मुख्य-अतिथि) के साथ शिष्ट परिषद् के मान्य सदस्य मंच पर विराजमान है।

भारतीय भाषा और साहित्य विभाग के निदेशक-आचार्य भी रहे। एक जगह घुमक्कड़ अज्ञेय रहे ही नही। इसीलिए उन्हे यायावर या परिव्राजक कहा जाए तो अनुचित न होगा। उपन्यास, कहानी, कविता, निबन्ध, गद्यगीत, आलोचना, फोटोग्राफी, बागवानी, चर्मशिल्प, मृत्तिका प्रतिमानिर्माण, पर्वतारोहण, सिलाईकला तथा सम्पादन जैसी बहुआयामी वृत्तियो के धनी इस कलाकार को देखकर लगता था कि अनेक को एक मे साधने की कला कोई इनसे सीखे। उन्हे कई राष्ट्रीय पुरस्कार मिले। 'कितनी नावो मे कितनी बार' रचना पर ज्ञानपीठ, आँगन के पार द्वार पर साहित्य अकादमी पुरस्कार मिला। मरणोपरात उत्तर प्रदेश ने एक लाख रुपये का भारत-भारती पुरस्कार दिया। ज्ञानपीठ पुरस्कार की विपुल राशि से 'वत्सल निधि' की स्थापना कर नवोदित प्रतिभाओ के विकास के लिए कई कार्यक्रम आयोजित किए। सम्पूर्ण देश मे लेखक-शिविर लगाए।

अज्ञेय हिन्दी मे प्रयोगवाद के जन्मदाता है। तारसप्तक के सम्पादन से उन्होने हिन्दी मे कविता और उसकी भाषा को एक नया मोड दिया। वैज्ञानिक युगबोध, आधुनिकता, व्यक्तिगत अभाव और कुंठा, यौनचेतना, सामाजिक विसगति, कला और क्षतिपूर्ति, क्षणवाद, नैतिकता, मूल्य और उद्देश्य, राग तथा बौद्धिकता जैसे विषयो पर उन्होने रचनाएँ लिखी। उन्होने व्यक्तिचेतना और समाजबोध को अलग करके नही देखा, उन्होंने लिखा--

सूरज का जपा फूल सागर हाथों
अम्बा तिमिरमयी को नैवेद्य चढ़ चला।

*　　　　*

यह दीप अकेला स्नेह भरा
है गर्व भरा मदमाता पर
इसे भी पंक्ति को दे दो।

अज्ञेय का साहित्यिक जीवन १९३३ से प्रारम्भ हुआ, भग्नदूत के प्रकाशन के साथ। फिर चिन्ता तारसप्तक, इत्यलम्, हरी घास पर क्षणभर, बावरा अहेरी, इन्द्रधनुष रौंदे हुए ये, अरी ओ करुणा प्रभामय, आँगन के पार द्वार, कितनी नावो मे कितनी बार, क्योंकि मैं उसे जानता हूँ, सागरमुद्रा, पहले मैं सन्नाटा बुनता हूँ, पूर्वा, सुनहले शैवाल, जैसे सकलन निकले। हिन्दी साहित्य एक आधुनिक परिदृश्य, भवती, अतरा, जोगलिखी, सवत्सर तथा अद्यतन जैसे निबन्धसकलन प्रकाशित हुए। शेखर एक जीवनी, नदी के द्वीप, अपने-अपने अजनबी जैसे उपन्यास छपे जो हिन्दीउपन्यासो की शृ खला मे नया विषय तथा नया शिल्प लेकर आए थे। १९५९ मे नेहरू अभिनन्दन ग्रन्थ का सम्पादन कर, १९४६ मे प्रतीक का सम्पादन कर तथा १९६५ मे दिनमान का सम्पादन कर उन्होने सास्कृतिक अभियान तथा सगठनशक्ति का परिचय दिया।

अज्ञेय का काव्य हिन्दी मे एक बृहत्तर माध्यम की खोजयात्रा कहा जा सकता है। नये प्रतीक और मिथक, नये बिम्ब और भाषामुद्रा, तीव्र सवेग और कल्पना तथा जीवत भावानुभवो ने उनकी कविताओ को समृद्ध बनाया है। 'जोग लिखी' मे कही उन्होने लिखा है—'हर कृतिकार कृति के द्वारा मुक्त होता है। अगर उस मुक्ति का लाभ और बोध उसको नही होता तो फिर उसने जो लिखा है, वह रचना नही है।'

लम्बे सर्जना के क्षण कभी भी हो नहीं सकते
बूँद स्वाती की भले हो।
बेधती है मर्म सीपी का उसी निर्मम त्वरा से,
वज्र जिससे फोड़ता चट्टान को,
भले ही फिर व्यथा के तम में,
बरस पर बरस बीते,
एक मुक्ता रूप को पकते।

अज्ञेय ने मनुष्य की मुक्ति के लिए गुहार लगाई। रूढियो और अज्ञान से जूझते मनुष्य को ऊपर उठाने का सकल्प लिया। हर टूटते किन्तु सतत सघर्षरत व्यक्ति के प्रति उनकी हमदर्दी है। सामाजिक न्याय के लिए खड़े होने वाले के साथ वह खडे है। अज्ञेय की यही अपनी पहचान है और इसीलिए उनकी कविता जीवित रहेगी—

क्योंकि जिसने कोड़ा खाया है
वह मेरा भाई है,
क्योंकि यो मै उसकी मार से तिलमिला उठा हूँ,
इसके लिए मै उसके साथ नहीं चीखा चिल्लाया हूँ,
मै उस कोड़े को छीन कर तोड़ दूँगा।
मैं इंसान हूँ और इंसान वह अपमान नहीं सहता।

संग्रहालय अंक

गुरुकुल विश्वविद्यालय का सग्रहालय पुरातत्त्व, भारतीय सस्कृति और इतिहास की सुन्दर धरोहर है। इसका उद्घाटन पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने किया था। प्रसिद्ध इतिहासवेत्ता डा० वासुदेवशरण अग्रवाल भी उस समय उपस्थित हुए थे। प्रो० हरिदत्त वेदालकार, डा० गगाराम जी गर्ग तथा डा० बिनोदचन्द्र सिन्हा ने अपने कार्यकाल मे इसकी उन्नति के लिए बडा परिश्रम किया। सम्प्रति इसके निदेशक डा० जबरसिह सेगर है।

इस अक मे दी गई सामग्री से गुरुकुल सग्रहालय का परिचय प्राप्त होगा। इसके लिए संग्रहालय के निदेशक डा० जबरसिंह सेगर तथा सग्रहालयाध्यक्ष डा० सूर्यकान्त श्रीवास्तव को हम विशेषरूप से धन्यवाद देते है।

—डा० विष्णुदत्त राकेश

जिहाद का झंडा

—कुमार हिन्दी*

बुजुर्गों ने नौजवानों के कत्लेआम का
हुक्म दे दिया है।
उनका बस चले तो वह नौजवानों को
बुजुर्ग बना दें
जवानी का जवानी में खून कर दें
    नौजवान इसे खूब समझते हैं
    वह विद्रोह करते हैं
क्या कत्लेआम के हुक्म के खिलाफ
    विद्रोह करना जुर्म है ?
क्या आत्मरक्षा करना गुनाह है ?
    उठो, दकियानूसी सत्ता के विरुद्ध
    जिहाद का झंडा बुलन्द करो
पाखण्ड और धर्मान्धता का विनाश करो
    बुजुर्ग जिज्ञासा का हनन करते हैं
    खुले चिन्तन का ह्रास करते हैं
उठो, रूढ़ियों को तोड़ो
पुराने ढर्रों से मुक्त हो
    मूर्खों से, पाखण्डियों से, लोहा लेना होगा !
भ्रष्टाचार का मुकाबला करना होगा !
    अकेले पड सकते हो
    दुरदुराए जा सकते हो
    धमकाए जा सकते हो
    सताए जा सकते हो
लेकिन, अन्याय सहन करना महापाप है
नौजवानो,
    तुम्हे भविष्य बुला रहा है
    भविष्य की झाँकी देखो
    अपने कत्लेआम के हुक्म के विरुद्ध
    जिहाद का झंडा बुलन्द करो।

* *

---

* श्री बलभद्रकुमार हूजा 'कुमार हिन्दी'
पूर्व कुलपति, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय।

नाम

—कुमार हिन्दी

नाम !
निमानियों का मान है
नितानियों की तान है
निराश्रितों का आश्रय
निस्सहायों का सहाय
दलितों की आशा
पतितों का उद्धारक
    क्योंकि उनका कोई और तो है नहीं
लेकिन
    केवल नाम ही नाम
    अनस्थीसिया है
    ट्रांक्विलाइज़र है
क्या नाम ने
    सोमनाथ के पुजारियों की रक्षा की ?
    मुहम्मद शाह रंगीले की रक्षा की ?
    सिराजुद्दौला की रक्षा की ?
नाम मदद करता है
    महमूद गौरी की,
    नादिरशाह की,
    राबर्ट क्लाइव की !
हाँ, नाम भक्तों को हौसला प्रदान करता है—
नाम ने हौंसला प्रदान किया
    ईसा मसीह को
    गुरु अर्जुनदेव को
    गुरु तेग़बहादुर को
    शहीदे आज़म भगतसिंह को
    राजगुरु, सुखदेव, वीर हरिकृष्ण को ।
नाम
    शान्ति भी, शक्ति भी प्रदान करता है
तब, जब जुबान पर नाम हो
    हाथ में तलवार हो ।

———

उत्तराखण्ड में लोकशिक्षण का एक नया केन्द्र

डा० कृष्णदत्त वाजपेयी
पूर्व अध्यक्ष, प्राचीन भारतीय इतिहास विभाग, सागर विश्वविद्यालय

वर्तमान युग मे संग्रहालयो की उपादेयता की ओर लोगो का ध्यान गया है। यूरोप और अमेरिका मे तो विविध प्रकार के सग्रहालयो की सख्या बहुत बडी है और दिन पर दिन उसमे वृद्धि होती जा रही है। वहाँ प्राय. प्रत्येक नगर मे एक न एक सार्वजनिक सग्रहालय मिलेगा। शिक्षा-सस्थाओ के अपने सग्रहालय अलग होते है, जिनमे विद्यार्थियो के उपयोग की वस्तुएँ प्रदर्शित रहती है। पश्चिमी देशो मे बहुत-से सग्रहालय ऐसे मिलेगे जो व्यक्तियो के द्वारा अपने निजी धन से स्थापित किए गए है। दुर्भाग्य से हमारे देश मे इस दिशा मे बहुत कम प्रगति हुई है। सारे भारत मे सभी प्रकार के सार्वजनिक सग्रहालयो की सख्या १५० से अधिक न होगी। इनमे से भी बहुत-से केवल नाम के ही मिलेंगे। हमारे यहाँ के सग्रहालयो की सामग्री का वैसा उपयोग भी नही होता जैसा कि पश्चिम मे हो रहा है। भारत के विभिन्न प्रदेशो मे स्थापत्य, मूर्तिकला एव चित्रकला के अवशेष तथा प्राचीन सिक्के, हस्तलिखित ग्रन्थ आदि वस्तुएँ बहुत बडी सख्या मे बिखरी पडी है। इनमे से बहुत कृतियाँ नष्ट हो रही है। शासन तथा जनता को अब इस ओर शीघ्र ध्यान देना चाहिए, जिसमे हमारी यह प्राचीन धरोहर नष्ट होने से बच सके तथा उसका यथोचित उपयोग किया जा सके।

भारत में सग्रहालयो की सख्या तथा उनकी उत्तरोत्तर उन्नति की दृष्टि से उत्तर प्रदेश का स्थान अग्रगण्य है। पिछले अनेक वर्षो मे इस दिशा मे बहुत कुछ प्रगति हुई है, जिसका मुख्य श्रेय इस प्रदेश के विद्वान् पूर्व शिक्षामत्री डा० सम्पूर्णानन्द जी को है। १९४७ ई० मे उन्होने इस प्रदेश के सार्वजनिक सग्रहालयो की दशा सुधारने एव उनमे वृद्धि करने के उद्देश्य से एक सग्रहालय समिति की स्थापना की थी। इस समिति ने जो अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की वह अब धीरे-धीरे कार्यान्वित हो रही है।

समिति ने इस प्रदेश के जिन नगरो मे नये सग्रहालयो की स्थापना की सिफारिश की है उनमें एक हरिद्वार भी है। यह नगर हिन्दुओ के मुख्य तीर्थ स्थानो मे है। प्रति-वर्ष यहाँ भारत के कोने-कोने से बहुत बडी सख्या मे लोग आते है, कुम्भ तथा अर्ध-कुम्भ

के अवसर पर इन दर्शको की सख्या बहुत अधिक हो जाती है। सौभाग्य से हरिद्वार की मुख्य शिक्षासस्था गुरुकुल कागडी विश्वविद्यालय ने भी अपने यहाँ के 'वेद मन्दिर' मे एक सग्रहालय की स्थापना की है, जिसे उत्तर प्रदेशीय सरकार ने भी मान्यता दी है। इस सग्रहालय मे चार विभाग हैं—१. मूर्तिकला विभाग, २. चित्रकला विभाग, ३ सिक्को का विभाग ४ विविध वस्तुओ का विभाग।

मूर्ति विभाग मे उत्तराखड के विविध स्थानो से प्राप्त अनेक मूर्तियाँ प्रदर्शित हैं। ये मुख्यत. पूर्वमध्यकाल तथा उत्तरमध्यकाल की हैं। इनमे महिषमर्दिनी दुर्गा, शिव, विष्णु, ब्रह्मा, जैन तीर्थङ्करो आदि की मूर्तियाँ हैं। चतुर्मुखब्रह्मा का एक सिर भी यहाँ प्रदर्शित है जिसका अलकृत जटाजूट तथा मुखो की मुद्रा अत्यन्त सुन्दर है। यह कलाकृति ईस्वी आठवी शताब्दी के अन्त की है। हाल मे मिट्टी की भी कुछ मूर्तियाँ सग्रहालय के लिए उपलब्ध हुई है, जो मौर्यकाल से लेकर गुप्तकाल तक की है। सहारनपुर जिले के झीवरहेडी नामक स्थान से एक शिलापट्ट मिला है जिसमे देवताओ और असुरो के द्वारा समुद्र-मन्थन का दृश्य बडी सजीवता के साथ अकित किया गया है।

चित्र विभाग मे पहाडी कला के अनेक चित्र प्रदर्शित है। इनमे से कुछ चित्र उच्च-कोटि के भी है। टिहरी-गढवाल की रियासत मे (जो अब उत्तर प्रदेश का एक जिला बन गयी है) १८वी और १९वी शती मे चित्रकला की पहाड़ी शैली का अच्छा विकास हुआ। मुगल दरबारो मे रहने वाले अनेक चित्रकार टिहरी नरेशो के सरक्षण मे रहे थे। उनके तथा उनके वशजो के द्वारा पहाडी चित्रकला को बहुत प्रोत्साहन मिला। इस शैली के कितने ही चित्र अब भी पूर्वी पजाब, टिहरी-गढवाल, गढवाल तथा अल्मोडा जिले के विभिन्न स्थानो मे पड़े हुए है। अच्छा हो यदि इनमे से कुछ चुने हुए चित्रो का सग्रह हरिद्वार के सग्रहालय मे किया जा सके।

हाल मे गुरुकुल सग्रहालय के कार्यकर्ताओ ने कनखल के कुछ भित्तिचित्रो का सग्रह अपने यहाँ किया है। ये चित्र 'निर्मला अखाडा' नामक एक बडी इमारत की दीवारो पर मिले है। इनमे से कुछ १९वी शताब्दी के प्रारम्भ के तथा कुछ मध्य के बने हुए है। मुझे सग्रहालय के मन्त्री श्री हरिदत्त वेदालकार के साथ इन भित्तिचित्रो को देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ और इन्हे देखने पर तत्कालीन चित्रकला की एक झाँकी मिली। इस कला मे मुगल, पहाडी तथा यूरोपीय शैलियो का अच्छा सम्मिश्रण हुआ है। कुछ चित्रो मे रग, रेखा, वर्ण्यविषय तथा भाव की ओर कलाकारो ने काफी ध्यान दिया है। झूला झूलती हुई स्त्रियाँ, विविध राग-रागनियो के चित्र, पौराणिक दृश्य, राजाओ की शोभायात्रा, आदि विभिन्न विषय इनमे मिलते हैं। मुख्य भित्तिचित्रो के प्रतिचित्र बनवा कर सग्रहालय मे प्रदर्शित कर दिए गए हैं। इनमे आसावरी रागिनी, शुक के साथ क्रीडा करती हुई वनिता, विरहिणी नायिका, होली का दृश्य, राम का अभिषेक, शृङ्गार मे तल्लीन स्त्री तथा विविध नायिकाओ के चित्र उल्लेखनीय हैं।

संग्रहालय मे सिक्को का विभाग भी दर्शनीय है। इस विभाग मे प्रारम्भिक आहत सिक्को से लेकर अर्वाचीन काल तक के सिक्के प्रदर्शित हैं। विदेशो के सिक्को का भी अच्छा संकलन किया गया है। विभिन्न कालो के अनुसार सिक्के अलग-अलग रक्खे गए हैं।

चौथे विभाग के अन्तर्गत विविध मानचित्र, लिपिपत्रक आदि है। ब्राह्मी, खरोष्ठी आदि प्राचीन लिपियो के लगभग ६० चार्ट अब तक तैयार हुए है जो कि कालक्रमानुसार भवन मे प्रदर्शित किए गए हैं।

संग्रहालय की स्थापना तथा उसकी समृद्धि मे इन पक्तियो के लेखक ने सहयोग देकर अपना श्रम सफल किया है।

वस्तुत· यह संग्रहालय एक बडी कमी को दूर करता है। इसके द्वारा गुरुकुल विश्व-विद्यालय तथा हरिद्वार की अन्य शिक्षासस्थाओ मे पढने वाले विद्यार्थियो का लाभ तो होता ही है, जनसाधारण भी इससे लाभान्वित होते है। संग्रहालय के सचालक ने इस बात का ध्यान रक्खा है कि उसमे संग्रहीत सामग्री का पूरा उपयोग प्रादेशिक इतिहास के अन्वेषण मे किया जाए। उनका यह भी उद्देश्य है कि इस संग्रहालय के द्वारा शिक्षण का कार्य अग्रसर हो तथा जनसाधारण का ध्यान भारत के प्राचीन गौरव की ओर आकर्षित हो। उत्तरप्रदेशीय सरकार ने हाल मे प्रादेशिक संग्रहालय निर्माण की जो महत्त्वपूर्ण योजना बनायी है उसकी पूर्ति की ओर गुरुकुल संग्रहालय अग्रसर है। आशा है कि शासन एव जनता के सहयोग से उत्तराखण्ड के सम्बन्ध मे पुरातत्त्व, नृतत्व, चित्रकला आदि की यथेष्ठ सामग्री इस संग्रहालय मे शीघ्र सकलित हो सकेगी, जिसके द्वारा विशेषकर इस प्रदेश के अज्ञात इतिहास पर बहुत कुछ प्रकाश पड सकेगा।

पुरातत्व संग्रहालय : संक्षिप्त परिचय

डा० बिनोदचन्द्र सिन्हा

प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, प्रा०भा० इतिहास, संस्कृति तथा पुरातत्व विभाग

विश्वविद्यालय परिसर मे दयानन्द द्वार से लगभग १०० मीटर पूर्व की ओर सग्रहालय भवन अवस्थित है। पीले रग मे पुता हुआ यह दोमजिला भवन अपने विस्तार के लिए तीसरी मंजिल के निर्माण की प्रतीक्षा कर रहा है। इस भवन मे सग्रहालय वर्तमान दशक के प्रारम्भ मे ही नियोजित किया गया था किन्तु अपने अतीत मे यह लगभग ८० वर्षों का इतिहास सँजोए है।

सग्रहालय शब्द अग्रेजी शब्द म्यूजियम का हिन्दी रूपान्तर है। म्यूजियम ग्रीक देवी म्यूज के नाम से बना है। ग्रीक गाथाओ मे म्यूज ललितकलाओ की देवी के रूप मे प्रतिष्ठित है।

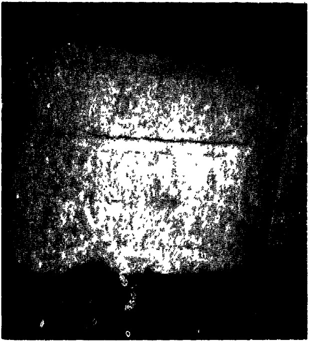
स्थापना और विकास

स्वामी श्रद्धानन्द जी की प्रेरणा से इस सग्रहालय की स्थापना १९०७–८ मे गगा पार पुण्यभूमि पर हुई। सग्रहालय की स्थापना के पीछे उस समय मूल भावना यह थी कि यह विद्यार्थियो के अध्ययन मे सहायक हो तथा साधारण जनता मे भी विभिन्न विषयो के प्रति रुचि उत्पन्न हो। शिक्षाप्रसार के साधन के रूप मे सग्रहालय की उपयोगिता प्रमाणित है। अनेको ग्रन्थो के पढने के बाद जो विद्या उपार्जित की जाती है, थोडे ही समय मे उसका सामान्य ज्ञान सग्रहालय बडी सुगमता से करा देता है। बच्चो के मनोरजन तथा ज्ञानवर्धन के लिए तो सग्रहालय की उपयोगिता सर्वमान्य है। अत १९४५ मे जब सग्रहालय का पुनर्गठन किया गया तब ऐतिहासिक वस्तुओ के सग्रह पर विशेष बल दिया गया। मार्च १९५० मे गुरुकुल की स्वर्ण जयन्ती के अवसर पर वेद मन्दिर मे वर्तमान सग्रहालय का उद्घाटन किया गया। उद्घाटन करते हुए प्रसिद्ध इतिहासवेत्ता स्वर्गीय डा० वासुदेवशरण अग्रवाल ने इस सग्रहालय के उज्ज्वल भविष्य की कामना की।

वर्ष १९७२ मे सग्रहालय को विश्वविद्यालय के प्राचीन भारतीय इतिहास, सस्कृति तथा पुरातत्त्व विभाग का अग बना दिया गया। इस विभाग के अध्यक्ष सग्रहालय के पदेन



पनघट पर कन्हैया—पहाडी शैली का एक चित्र (१६वीं शती)
(गुरुकुल सग्रहालय कलादीर्घा से)



समुद्र मंथन का पाषाण-फलक

पुरातत्व संग्रहालय को यह फलक ग्राम झीवरहेडी (सहारनपुर) मे प्राप्त हुआ। इस फलक मे कच्छप पर मन्दराचल पर्वत की मथानी है जिसमे शेषनाग रज्जु के स्थान पर लपेटा गया है। फलक मे दायी ओर एक देवता और बायी ओर आठ दैत्य खडे हुए समुद्र का मन्थन कर रहे है। फलक मे शेषनाग का मुँह देवताओ की ओर तथा पूँछ दैत्यो की ओर स्पष्ट है। यह फलक लदन के भारतोत्सव के अन्तर्गत प्रदर्शनी मे रखा गया था।



कांगडी ग्राम (बिजनौर) से प्राप्त आसवपायी कुबेर (९-१०वी शती ई०)
(गुरुकुल संग्रहालय)

निदेशक नियुक्त किए गए। १६८१ मे सग्रहालय अपने वर्तमान नवीन भवन मे स्थानातरित कर दिया गया।

अल्पकाल मे गुरुकुल सग्रहालय ने जो उन्नति की है उसकी सराहना देश के अनेक विद्वानो और पुरातत्त्ववेत्ताओ ने मुक्तकण्ठ से की है। प्रतिवर्ष हजारो धर्मपरायण यात्री हरिद्वार पावन गगा मे स्नान करने आते हैं, उनके लिए यह सग्रहालय स्वस्थ मनोरजन एव ज्ञानवर्धन का महत्त्वपूर्ण साधन बन गया है। विद्यार्थियो तथा शिक्षितवर्ग की ज्ञानपिपासा की शान्ति के लिए इतिहास, पुरातत्त्व, अभिलेखशास्त्र, मुद्राशास्त्र आदि की विविध सामग्री सग्रहालय मे विद्यमान है। लगभग पूरे वर्ष दर्शको की चहल-पहल से सग्रहालय भवन व्याप्त रहता है। पचपुरी-हरिद्वार की विभिन्न शिक्षण-सस्थाएँ अपने छात्रो को क्रियात्मक ज्ञान देने के लिए गुरुकुल सग्रहालय का उपयोग कर रही है। देहरादून, मुजफ्फरनगर, सहारनपुर, चण्डीगढ, हरियाणा आदि की छात्र-मण्डलियाँ भी अपनी सरस्वती-यात्राओ मे इसे देखने प्रतिवर्ष आया करती है।

वर्ष १६५२ मे गुरुकुल के पास ही बहादराबाद मे खुदाई कराने वाले पुरातत्व विभाग के उत्खनन शाखा के अधीक्षक डा० यज्ञदत्त शर्मा ने वहाँ से प्राप्त प्रागैतिहासिक अवशेषो को जब गुरुकुल के सग्रहालय मे दिखाया तो उपस्थित लोगो की आस्था सहज रूप मे अपनी प्राचीन सस्कृति मे जागृत हो उठी। पुरातत्व, कला, सस्कृति तथा इतिहास आदि विषयो पर सग्रहालय द्वारा आयोजित व्याख्यानो मे देश के जाने-माने विद्वान आमत्रित किये जाते हैं।

इस सग्रहालय ने स्थानीय कला को सुरक्षित रखने मे महत्वपूर्ण योगदान दिया है। कनखल की अनेक इमारतों पर १६वी शती के भित्तिचित्र है। इन चित्रो मे कुछ ईस्ट इण्डिया शैली के है। चित्रो से यह स्पष्ट है कि इनका निर्माण बहुत कुशल हाथो से नही हुआ, फिर भी कहीं-कही उत्तम कला के उदाहरण दृष्टिगोचर होते है। रामाभिषेक, झूले की नारियाँ, राजाओ की शोभायात्रा, समुद्रमन्थन तथा राधा-कृष्ण के चित्रो मे प्राचीन कागडा शैली के तत्व पाये जाते है। गुरुकुल सग्रहालय ने इन भित्तिचित्रो के कुछ फोटो भी तैयार करवाये है। इस प्रकार भावी सन्तति के लिए एक लुप्त होती हुई कला को सुरक्षित रखने का प्रयास किया गया है।

प्रागैतिहासिक सामग्री

इसमे मोहनजोदेडो, हडप्पा तथा कालीबगा से प्राप्त सामग्री प्रदर्शित की गई है। प्रागैतिहासिक काल के ताँबे के हथियार, मगलौर तहसील जिला सहारनपुर के निकट नसीर पुर नामक एक गाँव से डा० देशपाण्डे को उत्खनन द्वारा प्राप्त हुए थे। इनमे काँटेदार बर्छी, हारपून्स, कुल्हाडी आदि नौ हथियार है। इन हथियारो का प्रयोग तत्कालीन मानव अपनी

प्रतिदिन की आवश्यकताओ की पूर्ति हेतु करता था। इन्हे गगा घाटी के हथियार के नाम से भी पुकारा जाता है। ये हथियार सम्भवत १८वी शती ई०पू० के है।

सिन्धु घाटी सभ्यता से सम्बन्धित सामग्री मे मिट्टी की मूर्तियाँ, मृत्तिका पात्र, खिलौने आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। मिट्टी की मूर्ति मे मातृदेवी की मूर्ति अपना विशेष स्थान रखती है। यद्यपि कला की दृष्टि से यह महत्वपूर्ण नही है, इसमे शरीरसौष्ठव नही है। गले मे हार है, आँख और स्तन अलग से मिट्टी के टुकड़े चिपकाकर बनाये गए हैं। धार्मिक दृष्टि से इनका महत्व अवश्य ही रहा होगा क्योकि ये मूर्तियाँ उपासना की दृष्टि से बनाई गई होगी। खिलौनो मे कुत्ते, हाथी आदि की मूर्तियाँ उल्लेखनीय हैं। कालीबगा राजस्थान से प्राप्त सामग्री मे मृत्तिका पात्रो के टुकडे, खिलौने तथा हाथीदात से बनी हुई वस्तुएँ हैं। मृत्तिका पात्रो के टुकडो पर सिन्धु सभ्यता की भाँति काले रग से रेखांकन किया गया है। ये भूरे रग के हैं। खिलौनो की आकृति भी सिन्धु सभ्यता से साम्य रखती है।

तक्षण कृतियाँ

इस सग्रहालय की तक्षणदीर्घा मे करीब ३५० प्रस्तर तथा धातु प्रतिमाएँ सग्रहीत हैं। इनमे प्रमुख रूप से कुषाणकाल से लेकर मध्यकाल तक की हिन्दू, बौद्ध तथा जैन मूर्तियाँ हैं। ये मूर्तियाँ अधिकतर हरिद्वार के आसपास के क्षेत्रो से सग्रहीत की गई है। कुषाणकालीन मूर्तियाँ लाल चित्तीदार पत्थर पर उत्कीर्ण की गई है। ये मूर्तियाँ सौन्दर्य-प्रदर्शन के अतिरिक्त भावभगिमा तथा शिल्पकारी की दृष्टि से उत्कृष्ट कला की परिचायक हैं। इन मूर्तियो मे शीर्षहीन बुद्ध, गजलक्ष्मी, शेषशायी विष्णु, स्तम्भ के सहारे स्त्री तथा एकमुख शिवलिंग आदि मूर्तियाँ विशेषरूप से उल्लेखनीय है।

गुप्तकालीन मूर्तियो मे बुद्ध का सिर, शेषशायी विष्णु तथा महिषासुरमर्दिनी की मूर्तियाँ उच्चस्तरीय हैं। ये मूर्तियाँ अधिकतर हरिद्वार के आसपास के क्षेत्रो से सग्रहीत की गई हैं।

हिन्दू धर्म से सम्बन्धित मूर्तियो मे विष्णु, त्रिमूर्ति, हरिहर, कुबेर, सिंहवाहिनी दुर्गा, शिव-पार्वती तथा समुद्रमथन आदि उल्लेखनीय है। मध्यकालीन बुद्ध की मूर्तियो मे पद्मपाणि बुद्ध की प्रतिमा और बुद्ध के पार्श्व मे चावरधारी परिचायिकाओ तथा उड़ते हुए गधर्वों को दर्शाया गया है। जैन मूर्तियो मे चौबीसवे तीर्थकर महावीर जी की शीर्षहीन मूर्ति, जैन मन्दिर का शिखर उल्लेखनीय है। इस सग्रहालय का समुद्र मथन का पाषाणफलक लन्दन मे हुए "भारत उत्सव" वर्ष १९८२ मे प्रदर्शित किया गया। गुरुकुल के लिये यह बड़े गौरव की बात है।

पाषाणप्रतिमाओ के अतिरिक्त करीब ११५ धातु प्रतिमाएँ भी सग्रहालय मे सग्रहीत है। इनमे विविध धातुओं से युक्त विष्णु, लक्ष्मी और दुर्गा आदि की मूर्तियाँ

उल्लेखनीय हैं। ये सभी मूर्तियाँ अधिकतर अष्टधातु से निर्मित हैं। इसी प्रसंग मे उल्लेखनीय है कि दिल्ली के मेसर्स शान्ति विजय कम्पनी ने १२ अष्टधातु की मूर्तियाँ उपहारस्वरूप प्रदान की। स्वर्गीय डा० बी०एन० शर्मा के सहयोग से इन मूर्तियों को प्राप्त करने का श्रेय लेखक को है।

मृण्मूर्तियाँ

भारतीय इतिहास के निर्माण मे मृण्मूर्तियो का विशेष योगदान रहा हैं। इस सग्रहालय मे ३६३ मृण्मूर्तियाँ सग्रहीत हैं, जो मौर्यकाल से लेकर गुप्तकाल तक की हैं। इनका सग्रह प्रमुख रूप से मथुरा, कौशाम्बी तथा समीपवर्ती स्थानो से किया गया है।

मथुरा से प्राप्त मौर्यकालीन मृण्मूर्तियाँ काली है। भूरी मिट्टी से निर्मित हैं। मौर्यकालीन मृण्मूर्तियो मे मातृदेवी की मूर्तियाँ उल्लेखनीय हैं। गले मे पड़ी माला तथा शरीर के अवयव देखकर स्पष्ट प्रतीत होता है कि ये अलग से बनाकर चिपकाये गये हैं। शुंगकालीन मूर्तियाँ उत्कृष्ट कला की द्योतक हैं। अधिकाँश रूप मे सभी मृण्मूर्तियाँ साँचे से ढालकर बनाई गई हैं। ये मूर्तियाँ सामाजिक तथा आर्थिक स्थिति पर प्रभाव डालने के साथ-साथ कला के विकास और उत्कर्ष की भी द्योतक है।

कुषाणकालीन मृण्मूर्तियाँ सौन्दर्य की दृष्टि से शुगकालीन मृण्मूर्तियो से हीन हैं। कुषाणकालीन मृण्मूर्तियो मे पखदार पगडी धारण किए हुए पुरुष मस्तक, दोनो हाथ जोड़े पूजा भाव मे मिट्टी से बनी पुरुष की मूर्ति मे केश घुंघराले ओर गले मे माला है। त्रिशूल धारण किए हुए देवी की मूर्ति आदि दर्शनीय है।

गुप्तकालीन मृण्मूर्तियो का उत्तम सग्रह इस सग्रहालय मे है। हाथ से निर्मित मृण्मूर्तियाँ केश-विन्यास, भावभगिमा, वस्त्राभूषण आदि की दृष्टि से कला की सर्वोत्तम उपलब्धियाँ है। ये तत्कालीन समाज एव धर्म के विभिन्न पहलुओ पर भी प्रकाश डालती है। इन मूर्तियो मे मेखला धारण किए हुए तथा दोनो हाथ कमर पर रखे हुए स्त्री-प्रतिमा का धड, कलापूर्ण ढग से केश-विन्यास किए हुए तथा कानो मे कुण्डल धारण किए हुए स्त्रीप्रतिमा का सिर तथा शिव-पार्वती की खण्डित मूर्तियाँ उल्लेनीय हैं।

मृतिका पात्र

इस सग्रहालय मे विभिन्न प्रकार के मृतिका पात्र भी सहीत हैं। प्राचीन स्थानो की खुदाई मे विभिन्न प्रकार के मिट्टी के बर्तन और ठीकरे प्राप्त हुए हैं। इनमे कटोरा, कुल्हड, कुण्डे, तश्तरी, बट्टे और भिक्षापात्र आदि मुख्य हैं।

मृतिका पात्र विभिन्न स्थानो, जैसे मोहनजोदेडो, हडप्पा, कालीबगा, कुन्दनपुर (सहारनपुर), मडावर (बिजनौर), नसीरपुर (सहारनपुर), राखीगढ (हिसार), मित्तायल (भिवानी) आदि स्थानो से सग्रहीत किए गए हैं।

मुद्रा कक्ष

प्राचीन भारतीय इतिहास के निर्माण मे सिक्को ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। इनमे तत्कालीन राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक तथा आर्थिक दशा का अच्छा परिचय होता है। प्राचीन भारतीय इतिहास मे अनेक ऐसे स्थल है जिनकी जानकारी केवल सिक्को के माध्यम से ही हुई है। राजनीतिक परिवर्तनो के साथ ही ये सिक्के विभिन्न नामो से पुकारे गए हैं, जैसे निष्क, शतमान, दीनार, मोहर एवम् रुपया आदि।

आरम्भिक आहत सिक्को से लेकर अर्वाचीन काल तक के सिक्के प्रदर्शित किए गए है। सिक्को मे उत्तरमौर्यकाल मे ढाले गए सिक्के, इण्डोग्रीक राजाओ के सिक्के, पश्चिमी क्षत्रपो के सिक्के, कुषाण राजाओ के सिक्के, राष्ट्रकूट एवम् यौधेयो के सिक्के, गुप्तवशी राजाओ के सिक्के, कन्नौज के गुर्जर राजाओ के सिक्के, मध्यकालीन मुगलो के सिक्के, ब्रिटिशकालीन भारत के सिक्के तथा स्वतन्त्रता से पूर्व विभिन्न देशी रियासतो के सिक्के अपना विशिष्ट महत्व रखते है।

पाण्डुलिपि कक्ष

सग्रहालय मे हस्तलिखित ग्रन्थो का भी सग्रह है। इनमे सभी धर्मो को प्रतिपादित करने वाले हस्तलिखित ग्रन्थो के सग्रह का प्रयास किया गया है।

हिन्दू धर्म के पवित्र ग्रन्थो मे बाल्मीकिकृत रामायण, महाभारत के कई प्रकार के सस्करण, काश्मीरी (शारदा) लिपि मे लिखित प्रार्थनापुस्तक, बगलाभाषा मे लिखित देवी-स्त्रोत, १६वी शती के लगभग तिब्बती भाषा मे लिखित तन्त्र-ग्रन्थ उल्लेखनीय है। पाण्डुलिपियो मे गुरुग्रन्थसाहेब और कुरानशरीफ का महत्वपूर्ण स्थान है।

अस्त्र-शस्त्र कक्ष

प्रागैतिहासिक काल मे जब मानव को अपने अस्तित्व का बोध हुआ, उसी समय से उसने अपने जीवन की रक्षा के लिए अस्त्र-शस्त्र का प्रयोग प्रारम्भ किया। पाषाण काल मे मानव के विविध हथियार और अन्य उपकरण पाषाण निर्मित थे। जैसे-जैसे मानव ने विकास किया, उसके अस्त्र-शस्त्र उन्नतिशील होते गए। ताम्रकाल मे ताँबे के और जब लोहे का ज्ञान हुआ तो अस्त्र-शस्त्र लोहे के बनने लगे।

इस सग्रहालय मे अस्त्र-शस्त्र का भी एक पृथक कक्ष है। इनमें धनुषबाण, तलवार, ढाल तथा कवच प्रमुख है। युद्ध मे बजने वाली तुरही उल्लेखनीय है। इसके

अतिरिक्त द्वितीय महायुद्ध के समय की कुछ बन्दूके, मशीनगन आदि भी प्रदर्शित की गई है।

श्रद्धानन्द बलिदान कक्ष

गुरुकुल कांगडी विश्वविद्यालय के संस्थापक स्वर्गीय श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी की स्मृति में यह कक्ष स्थापित किया गया है। यह कक्ष आर्यसमाज की एक बहुत बडी धरोहर है। इस प्रदर्शनी मे पहुँचकर दर्शक आत्मविभोर हो उठते है। इसमे स्वामी जी के आरम्भिक जीवन काल से अन्तिम समय तक की झाँकी प्रस्तुत की गई है।

विविध सामग्री कक्ष

इस कक्ष मे प्रदर्शित वस्तुओ मे लाख कला के नमूने, नाथद्वारा तथा कागडा शैली के चित्र, प० नेहरू को उपहार मे प्राप्त कुछ विदेशी खिलौने, उत्तराखण्ड के प्राकृतिक सौन्दर्य के चित्र विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

अन्त मे छटी पचवर्षीय योजना के अन्तर्गत विभाग की उपलब्धि का उल्लेख महत्वपूर्ण है। पुरातत्व सग्रहालय के लिए पचास हजार रु० का विशेष अनुदान प्राप्त हुआ। सग्रहालय के कुशल सचालन के लिए क्यूरेटर और सग्रहालय सहायक के पद भी प्राप्त हुए। सहायक क्यूरेटर का पद विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने बहुत पहले ही सृजित कर दिया था। सग्रहालय को वर्तमान रूप प्रदान करने मे सग्रहालय के कर्मचारियो का योगदान प्रशसनीय रहा है।

सग्रहालय के विकास मे विश्वविद्यालय के कुलपति, उपकुलपति, कुलसचिव और वित्तअधिकारी ने समय-समय पर जो रुचि ली, वह अत्यन्त ही उपयोगी और प्रेरणादायक रही है। वर्तमान कुलपति श्री आर० सी० शर्मा सग्रहालय के विकास के लिए व्यक्तिगत रूप से प्रयत्नशील है। हमे पूर्ण विश्वास है कि उनके कार्यकाल मे यह सग्रहालय राष्ट्रीय स्तर प्राप्त करने मे शीघ्र ही समर्थ होगा।

भारतीय मृण-मूर्तियाँ एवं गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय का मृणमूर्ति-संग्रह

डा० सूर्यकान्त श्रीवास्तव
संग्रहालयाध्यक्ष

कला की अनुभूति साधारण से साधारण व्यक्ति को होती है। अनुभूति की अभिव्यक्ति के लिए आवश्यक है माध्यम। अत आसानी से उपलब्ध मिट्टी को सर्वसाधारण ने माध्यम के रूप मे अपनाया। सुविधापूर्वक सुलभ मिट्टी के निर्मित खिलौनो (मृण मूर्तियाँ) को भारतीय कला मे विशिष्ट स्थान प्राप्त हुआ। मृण-मूर्तियो का निर्माण मात्र अभिव्यक्ति ही नही वरन् धार्मिक एव सामाजिक आवश्यकताओ की पूर्ति के लिये भी किया गया। यही कारण है कि मृण-मूर्तियाँ जनसाधारण मे अधिक लोकप्रिय कला है।

भारतीय उपमहाद्वीप मे मृणमूर्तियाँ निर्माण की प्राचीनता का साक्ष्य बलूचिस्तान के मेहरगढ नामक स्थान से प्राप्त हुआ है। हाल मे हुए उत्खनन मे मेहरगढ के नव-पाषाण काल के स्तर से मानवीय एव पशु मृणमूर्तियाँ प्राप्त हुयी है। कालक्रम के आधार पर इनकी प्राचीनता सातवी सहस्राब्दी के पूर्वार्ध मे मानी गयी है। समय के साथ मे सस्कृतियो के परिवर्तनचक्र मे कलाकार हर बार जन्मा और समाप्त हुआ लेकिन मृण-मूर्ति निर्माण कला किसी न किसी रूप मे चलती रही। सस्कृतियो के परिवर्तन के साथ ही आधार एव शैली मे परिवर्तन हुआ जो मृण-मूर्तियो पर दृष्टिगोचर होता है। उदाहरणतया सिन्धु सभ्यताकालीन मातृदेवी की मृण-मूर्ति एव पशु वृषभ मूर्ति, मौर्य एव कुषाणकालीन मातृ-देवी एव पशु मूर्तियाँ शैली मे भिन्नता प्रस्तुत करती है। यही कारण है मृणमूर्तियाँ के निर्माणशैली विभिन्न सस्कृतियो के साथ जानी जाती है।

नवपाषाणकाल से सिन्धुसभ्यताकाल के मध्य निर्मित मृण-मूर्तियाँ विभिन्न सास्कृतिक शैलियो मे विभाजित की गयी है। यथा झोब से प्राप्त मातृदेवी की मृणमूर्ति, कुल्ली से प्राप्त मातृदेवी एव चतुर्थ सहस्राब्दी के अन्तिम चरण या तृतीय सहस्राब्दी के प्रारम्भिक चरण मे बनाई गयी मृण-मूर्तियो का उल्लेख विशेषरूप से किया जा सकता है। मृण-मूर्तियो के निर्माण की परम्परा का क्रम निवासा एव ईनाम गाव से प्राप्त मृणमूर्तियो के रूप मे चलता रहा।

उत्तर भारत मे सिन्धु सभ्यता के पश्चात काल मे लालकिला जिला बुलन्दशहर से प्राप्त गेरुये रंग वाले मृद भाण्ड वाली सस्कृति से प्राप्त मानवीय मृण-मूर्ति है। तदुपरान्त चित्रित भूरे रंग वाले मृद भाण्ड वाली सस्कृति (Painted Grey Ware Culture) से प्राप्त जखेड़ा की मृण-मूर्तियो का उल्लेख आवश्यक है। उत्तरी कृष्णमार्जित मृद भाण्ड (Northern Black Polished Ware Culture) वाली सस्कृति के अयोध्या उत्खनन से प्राप्त हाथ से बनी नारी मूर्ति है जिस पर उत्तरी कृष्णमार्जित चमक की गयी है, अपना विशिष्ट स्थान रखती है।

उत्तर प्रदेश एव बिहार के अनेक स्थानो से प्राप्त, हाथ से बनी मूर्तियाँ इस काल की उल्लेखनीय कृतियाँ है। इन मृणमूर्तियो का काल निश्चित नही है अतः इन्हे Ageless Archaeo Terracotta कहा जाता है। इनका निर्माण अनवरत ऐतिहासिक काल तक चलता रहा।

ऐतिहासिक काल का आरम्भ तृतीय शताब्दी ईसापूर्व ब्राह्मीलिपि के साथ माना गया है। मौर्यकाल मे निर्मित मृणमूर्तियाँ मानवीय तथा पशु दोनो ही बनाई गई। मूर्ति को अलकृत करना इस युग की विशेषता है। अलकरण मे छोटे-छोटे गोल तथा हल्के बिंदुओ से सज्जित मूर्तियाँ प्राप्त होती हैं। मानवीय मूर्तियो मे नारी मृण - मूर्तियाँ बहुतायत से बनायी गयी। सम्भवतः धार्मिक अनुष्ठान के लिए मातृदेवी की मूर्तियो का निर्माण किया गया। इनके निर्माण के मुख्यस्थल मथुरा, कौशाम्बी, पाटिलीपुत्र एव गगाघाटी के अन्य स्थान है। एक काल एव शैली मे क्षेत्रीय विभिन्नता दृष्टिगोचर होती है। उदाहरणस्वरूप पाटिलीपुत्र मे निर्मित मृणमूर्तियाँ आकर्षक, सुन्दर एव देखने मे कमनीय है। हाथ से बनी मूर्तियो मे अलकरण अधिकतर अलग से बनाकर लगाए गए है। लेकिन इनके चेहरे साँचे द्वारा निर्मित है।

शुंगकाल मे मृण-मूर्ति कला को नवीन शैली प्राप्त हुई। इस शैली का विकास सम्भवतः मृण-मूर्तियो की लोकप्रियता का जनसामान्य मे अपनाया जाना था। अभी तक मृणमूर्तियो के चेहरे ही साचे मे बनाये जाते थे। नयी तकनीक मे एक ही साँचे से सम्पूर्ण प्रतिमा को बनाया जाता था। इससे आकृति के शरीरसौष्ठव प्रदर्शन मे चपटापन अवश्य आया लेकिन एक ही प्रकार की कई मूर्तियाँ कम समय मे जनसाधारण के लिए बनाना सुलभ हो गया। अलकरण पूर्ववत किया जाता रहा, अलकरण के लिए ठप्पे का उपयोग एव पगडी की वेशभूषा मे विभिन्नता भी दिखायी देती है। लाल मिट्टी एव भूरे रग दोनो ही प्रकार की मृण-मूर्तियाँ बनायी गयी। शुंगकाल लगभग १०० वर्ष तक ही रहा लेकिन कला की दृष्टि से यह अत्याधिक समृद्ध कहा जा सकता है।

मृण फलक भी साँचे से इस युग मे बनाए गए। भारतीय मृणमूर्ति कला मे प्रथम बार दैनिक जीवन की विषयवस्तु, प्रतिमाविज्ञानशास्त्र पर आधारित एव प्राचीन साहित्य

मे वर्णित विषयो पर मृणफलक बनाए गए। इनके अतिरिक्त मिथुन युगल एव प्रेमप्रसगो को भी स्थान प्राप्त हुआ। प्रेम-प्रसगो मे विक्रम एव उर्वशी, उदयन एव वासवदत्ता तथा यक्ष एव यक्षी का चित्रांकन सुन्दर ढग से किया गया है। शुगकालीन मृणमूर्तिकला के निर्माण के मुख्य स्थानो मे मथुरा, पटना, कौशाम्बी, बक्सर, तामलुक तथा चन्द्रकेतुगढ मुख्य हैं।

ईसा के प्रारम्भिक काल मे शक-कुषाण राजाओ के समय मे मृणमूर्तिकला का ह्रास हुआ। कुषाणकाल मे मृणमूर्तियो के निर्माण मे खोखले शरीर की प्रतिमाएँ बनाई गई। सिर का भाग अलग से बनाकर मुख्य शरीर से बेलनाकार मिट्टी के बने भाग से जोड दिया जाता था। मूर्तियाँ बडी भारी आकार की बनाई गयी। मौर्य एव शुगकालीन अलकरण का स्थान अलग से चिपकाई मिट्टी के हार तथा कमरबन्द ने ले लिया जिस पर ठप्पे या लकडी से गहरी लाइने बनाकर सजाया जाता था। नग्नता का भी चित्रण किया गया। विभिन्न प्रकार की नारीमूर्तियाँ बनाई गयी जिसमे 'हारती' तथा माँ-बच्चे की मृण-मूर्तियाँ उल्लेखनीय है। यक्षपरम्परा से प्रभावित शैली मे लक्ष्मी, कुबेर, शिव आदि की मूर्तियाँ बनाई गयी। प्रस्तरप्रतिमाओ का निर्माण इसी काल मे प्रारम्भ हुआ जिसका प्रभाव मृणमूर्तिकला पर स्वाभाविक रूप से लक्षित है।

दक्षिणशैली मे इस काल मे मृणप्रतिमाएँ कुछ छोटी बनाई गयी। काओलिन का प्रयोग भी मृणमूर्तियो के निर्माण मे किया गया।

गुप्तकाल मे मृणमूर्तिकला अन्य कलाओ की तुलना मे चरमोत्कर्ष पर थी। मौर्य-शुगकालीन अलकरण नयी शैली मे विकसित हुआ। अर्धमीलित नेत्र, तीखे नक्श का चित्रण, ऊपरी सौन्दर्यबोध के प्रदर्शन ही नही बल्कि आन्तरिक मानसिक अनुभूतियो का प्रस्तुतीकरण अपने आप एक विशिष्टता प्रकट करता है। केशसज्जा मे विभिन्नता इस काल की प्रमुख देन मे से एक है, विशेषरूप से त्रिभागीय केशसज्जा गुप्तकाल की विशेषता है। देवी-देवता, मिथुन युगल, दैनिक जीवन के उपयोग की विशेषता एव सामाजिक विषयो को भी मृण-फलक का विषय चुना गया। विभिन्न धार्मूर्तियो का प्रस्तुतीकरण इसका विशेष उल्लेखनीय उदाहरण है।

गुप्तकाल मे प्राय सभी कलाओ को मान मिला। प्रस्तर पर मूर्तियो के निर्माण के साथ-साथ मृणमूर्तियो का निर्माण स्पष्टतया कलाविधाओ मे मृणमूर्तियो के विशिष्ट स्थान एव लोकप्रियता के द्योतक है। अहिच्छत्रा से मानवीय लम्बाई की गगा-यमुना की मूर्तियाँ दुर्लभ कलाकृतियाँ है।

सम्पूर्ण भारतवर्ष मे क्षेत्रीय विभिन्नता के साथ-साथ गुप्तशैली के विभिन्न केन्द्र विकसित हुए, यथा—हरकन एव अखनूर काश्मीर मे, रगमहल एव नगरी राजस्थान मे,

पवाया मध्यप्रदेश में, सेहत-मेहत कसिया राजघाट, अहिच्छत्रा-कौशाम्बी-मथुरा उत्तर प्रदेश मे, देवानमोरी गुजरात मे, वसराह एव पटना बिहार मे एव बाणगढ पश्चिम बगाल मे।

मृण-मूर्तियाँ एव मृणफलक के साथ ही गुप्त की ई टो के सज्जित मन्दिर जिनमे विभिन्न प्रकार की चित्रकारी, मिथुन युगल एव पौराणिक साहित्य पर आधारित दृश्यो को दर्शाने वाले मृण-फलक लगाए गए । अहिच्छत्रा, भीतरगाव, सिरपुर एव अपहसद्र विशिष्ट रूप से उल्लेखनीय है।

मृण-फलक एव ई टो द्वारा मन्दिर बनाए जाने की परम्परा पूर्वी भारत मे पाल एव सेन राजाओ के काल तक चलती रही। बुद्ध एव बौधिसत्व से सम्बन्धित भिन्न कथाओ के दृश्य दिखाये गये है। नालन्दा, गया, विक्रमशिला एव पहाडपुर (बगलादेश) का नाम विशेषरूप से उल्लेखनीय है। प्राप्त साक्ष्य के अनुसार यह आठवी-दशवी शताब्दी तक प्रचलित रही ।

उत्तर भारत मे मुस्लिम शासको के आगमन के कारण इस कला मे उल्लेखित ह्रास हुआ। १७वी - १६वी शताब्दी मे पुन बगाल मे इस कला का प्रारम्भ एव विकास हुआ।

मध्यकाल से वर्तमान तक मृण-मूर्तियाँ जनसामान्य मे लोकप्रिय रहीं। विशेषरूप से धार्मिक आवश्यकता एव बच्चो के खिलौनो के रूप मे।

समय एव क्षेत्रीय विभिन्नता का प्रभाव निरन्तर बना रहा फलत मध्यकाल, सुलतान काल, मुगलकाल एव कम्पनी सरकार का काल स्पष्टतया निर्धारित किया जा सकता है ।

गुरुकुल कागडी सग्रहालय के विभिन्न सग्रहो मे मृण-मूर्तियो का सग्रह विशेषरूप से उल्लेखनीय है। विभिन्न स्थानो से प्राप्त मृण-मूर्तियो की सख्या लगभग ५०० है। स्थानिक महत्ता के आधार पर यह सकलन मथुरा-कौशाम्बी एव विदिशा से प्राप्त मृण-मूर्तियो का है । अगनई खेडा, शाहबाद, आवला बरेली, एव इमलीखेड़ा व सरसावा सहारनपुर से भी कुछ मूर्तियो को सगृहीत किया गया है।

अधिकतर मृणमूर्तियाँ क्रय की गयी हैं। विदिशा से प्राप्त मृणमूर्तियाँ प्रो० कृष्णदत्त बाजपेयी के सौजन्य से उपलब्ध हुयी है। स्तरीय कालक्रम के अभाव मे शैली के आधार पर ही इनका विभाजन किया गया है।

सग्रहालय मे मौर्यकालीन भूरे रग की लगभग २५ मानवीय एव कुछ पशु मूर्तियाँ

है। कुछ मूर्तियाँ प्राक्मौर्यकालीन कही जा सकती है। अधिकतर मूर्तियो के निर्माण मे साँचे का उपयोग मुखभाग बनाने मे किया गया है।

— मात्र हाथ से बनी तीन मूर्तियाँ हैं। मुखभाग मे मिट्टी मे ही उठाकर नाक एव दबे हिस्से मे आँख बनायी गयी है। कानो मे भारी कुण्डल एव गले मे हार अलग से चिपकाया गया है। छोटे-छोटे बिन्दुओ से मूर्ति को सजाया गया है। मृणमूर्ति का कमर से नीचे का भाग टूटा हुआ है। भारी उभरा वक्ष स्थल समय का प्रभाव दर्शाता है। द्वितीय मृणमूर्ति का ऊपर का भाग टूटा हुआ है, कमर से नीचे के भाग मे फैला हुआ वस्त्र एव उस पर की गयी अलग से चिपकाई सज्जित पट्टियो से राज-शाही पोशाक का आभास दिलाती है।

इस काल की द्वितीय वर्ग की मृणमूर्तियो मे मुखभाग साँचे द्वारा बनाया गया है। मुखभाग को हाथ से बने शरीर से चिपकाया जाता है। अलग से मिट्टी की पट्टियो से सजाया गया है। केशविन्यास के ठप्पे द्वारा बने फूल, भारी कुण्डल, गले का हार, बाजूबन्द एव कमर मे मेखला बनाई गयी है। इनको छोटे-छोटे बिन्दुओ या गोल अथवा ठप्पे से सज्जित किया गया है।

पशुआकृति मे हाथी, घोडा एव कुत्ता है। भूरे रग की पशु मृणमूर्तियो मे विशेषत हाथी छोटे बिन्दुओ एव ठप्पे से सजाया गया है। अश्व एव कुत्ता आँखो की दर्शाने की कला पर ही इस वर्ग का माना गया है।

—शुगकालीन परम्परा मे साँचे से बने मृणफलक है जिनमे मौर्यकालीन फूलो की सज्जा केशविन्यास के साथ एव भारी अलकरण दर्शाये गये है। विविध युगलमिथुन सग्रहालय वीथिका मे प्रदर्शित है।

— विशेषरूप से उल्लेखनीय है एक गाडी का भाग जिसमे दोनो ओर दो-दो पुरुष बैठे है जिनके मध्य मे घट एव खाने योग्य वस्तुये रखी है। यह मृणमूर्ति साँचे से बनी है तथा तत्कालीन आवागमन व्यवस्था को दर्शाती है।

कुषाणकालीन मृणमूर्तियो मे अधिकतर सिर के भाग है जिनमे बेलनाकार मिट्टी का शकु लगा है जिससे उन्हे मुख्य खोखले शरीर से लगाया जाता था। खोखले, अनगढ, भारी एव कुछ बडे आकार की मृणमूर्तियाँ इस काल की देन है। अलग से चिपकाई हुयी पट्टियो द्वारा हार, मेखला एव अलकरण बनाये गए जिन पर ठप्पे से फूल के चित्र बने है। नग्नता को भी दर्शाया गया है। सज्जा के लिये ठप्पे का उपयोग इसी काल की देन है। सग्रहालय के सकलन मे कुषाणकालीन मूर्तियो मे पैरो पर बैठी हुयी लक्ष्मी की मूर्ति है। दोनो हाथ मे पुष्प हैं। इस मुद्रा मे पत्थर पर भी मूर्ति उत्कीर्ण की गयी है। कुबेर की प्रतिमा भी यक्षपरम्परा की उत्कृष्ट कृति है।

अन्य विशिष्ट कृति है 'हारती' की मूर्ति जो सम्भवत धार्मिक एव रोगनिदान की देवी के रूप मे पूजी जाती थी। इसके कई रूप मिलते है। सग्रहालय के सग्रह मे जो मूर्ति है वह सीधे बैठी है, बायी ओर गोद मे बच्चा है एव दाये हाथ मे प्याला।

गुप्तकालीन मृणमूर्तियो का अच्छा सकलन संग्रहालय मे है जिनमे त्रिभागीय विभिन्न केशसज्जा दर्शनीय है। कुछ मूर्तियाँ त्रिभागीय मुद्रा मे साँचे मे बनाई गयी हैं।

स्त्री की मृणमूर्ति जो एक वृत्त मे बनी है, वृत्त का चित्रित भाग ईट का खण्ड है। सुन्दर केशपाश, नुकीली नाक, आधी खुली आँखें, उभरी ठोडी, एक सुन्दर मुख को प्रस्तुत करती है। वृत्त के आस-पास का भाग भी फूल-पत्तियो की चित्रकारी से सज्जित है। लाल रग की यह मृणमूर्ति कौशाम्बी के सर्वेक्षण से प्राप्त हुयी है। प्रस्तुतीकरण अन्य क्षेत्रीय स्थानो के समरूप है।

द्वितीय मूर्ति युगलमिथुन की है। सिर का भाग टूटा हुआ है। साँचे से निर्मित इस फलक मे पुरुष बैठा हुआ है, उसके बायी ओर नारी जघा से सटी बैठी है। शारीरिक मुद्रा से एकाकार होने की आन्तरिक इच्छाभाव एव लोकलज्जा की झिझक स्वत इसमे प्रतीत होती है। सग्रहालय की यह एक दुर्लभ कृति है।

मध्यकाल की मूर्तियो मे गुप्तकला का प्रभाव लक्षित होता है लेकिन समाप्त-प्राय स्थिति मे। शरीरसौष्ठव एव अलकरण मे काफी परिवर्तन दिखायी देता है।

—बन्दर की विभिन्न प्रकार की मूर्तियाँ, तीन टागो पर बैठी मानवीय मूर्ति एव बल जोडी तथा पशु इस काल मे बनाये गये।

—कुछ मृणमूर्तियो के चेहरो पर पश्चिमी प्रभाव एव वेशभूषा पर कम्पनीकाल का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है।

—भारतीय मृणमूर्तिकला के लगभग सभी क्षेत्रो एव कालो की मूर्तियो का सकलन सग्रहालय मे है। मृणमूर्तियो के उचित प्रदर्शन हेतु सग्रहालय के केन्द्रीय कक्ष मे मृणमूर्तियाँ प्रदर्श की गयी है। आवश्यकता इनके विषद् अध्ययन की है। अगर उचित सुविधा मिले तो मृणमूर्ति पर अध्ययन अवश्य किया जाना चाहिए।

———

गुरुकुल संग्रहालय में सुरक्षित पाषाणप्रतिमाएँ

—सुखबीरसिंह
सहायक क्यूरेटर, गुरुकुल कांगडी विश्वविद्यालय संग्रहालय

भौगोलिक दृष्टि से यह संग्रहालय सहारनपुर जनपद के ऐसे स्थान मे स्थित है जिसे हरिद्वार की पवित्र भूमि कहा जाता है। यो तो उत्तर प्रदेश मे अनेक संग्रहालय है और उनमे से अनेक इस संग्रहालय से अधिक सम्पन्न और आकर्षक भी है, किन्तु इस संग्रहालय की एक अपनी विशेषता है। वह यह कि यह उत्तराखण्ड की प्राचीन सांस्कृतिक थाती का रक्षक होने के कारण आज एक महत्वपूर्ण संग्रहालय बना हुआ है। सांस्कृतिक चेतना की दृष्टि से यह क्षेत्र इतना सम्पन्न है जहाँ पुरातन युग से ही गगा की धारा प्रवाहित हो रही है। यहाँ गगा की घाटी मे एक भव्य प्राचीन संस्कृति पनप रही थी, जिसके चिन्ह इस संग्रहालय मे संग्रहीत पुरातात्विक सामग्री से स्पष्ट होते है।

गुरुकुल के उपवन का यह ज्ञानतरु संग्रहालय पूर्णरूपेण पुष्पित है। यह अन्य पुरातात्विक सामग्री की भाँति पाषाणप्रतिमाओ के सन्दर्भ मे भी अपना महत्वपूर्ण स्थान रखता है। इस कला का भी विशेष महत्व इस बात मे है कि वह मनोमय जगत और भूतमय जगत के मध्य एक सेतु है। इस पुल पर चढकर हम जान सकते है कि मनुष्य ने राष्ट्रीय संस्कृति के निर्माण मे एक ओर कितना सोचा था और दूसरी ओर कितना निर्माण किया था। कला किसी विचारकल्पना को दृश्यरूप देती है। कला का यही रहस्य है कि उसमे लोक की सांस्कृतिक परम्परा की व्याख्या होती है।

इस संग्रहालय मे सुरक्षित पाषाण प्रतिमाये भी अन्य पुरातात्विक सामग्री की भाँति ही क्रय द्वारा, उपहारस्वरूप और पुरातात्विक सर्वेक्षण द्वारा संग्रहीत की गयी है। आजकल इस वीथिका मे ३४४ प्रतिमाये संग्रहीत है। इन प्रतिमाओ मे प्रथम शती ई० से आधुनिक काल तक की पाषाणप्रतिमाये है, लेकिन इनमे प्रमुखरूप से प्रथम शती ई० (कुषाणकाल) से १०वी शती ई० तक की कलाकृतियो का बडा ही अनूठा संग्रह विद्यमान है। ये प्रतिमाये हिन्दू, बौद्ध तथा जैन प्रतिमायें है। इनका संग्रह मथुरा, शाहबाद (जिला हरदोई), कन्नौज, कागडी ग्राम, आम्रस्रोत, लालढाग (बिजनौर), पाण्डुस्रोत (गढवाल), झीवरहेडी, सुलतानपुर (सहारनपुर) तथा हरिद्वार के समीपवर्ती क्षेत्रो से किया गया है।

इन स्थानो से संग्रहीत प्रतिमाओ मे मथुरा कला की ३८ प्रतिमाये क्रय की गयी है। ये उन दुकानदारो से क्रय की गयी है जो प्राचीन कलाकृतियो का संग्रह रखते है। ये

प्रतिमायें कुषाणकाल से १०वीं शती ई० तक की हैं। इनमे अधिकतर कुषाणकालीन हैं। लाल चित्तिदार पत्थर पर उत्कीर्ण की गयी ये प्रतिमायें सौन्दर्यप्रदर्शन के अतिरिक्त भावभंगिमा तथा शिल्पकारिता की दृष्टि से उत्कृष्ट कला की परिचायक हैं। इन प्रतिमाओं मे बुद्ध प्रतिमा (सं० १३२३), अभयमुद्रा मे बुद्ध (१२८६), बुद्ध का महापरिनिर्वाण (१७७), एकमुखी शिवलिंग (१२८३), पद्महस्ता लक्ष्मी (१२८७), सप्तमातृकायें (३७२१), महिषासुरमर्दिनी (१२६१), कुबेर (४११) और शुक क्रीड़ारत नारी (१३१७) आदि प्रतिमायें विशेषरूप से उल्लेखनीय हैं।

इस संग्रहालय मे उपरोक्त प्रतिमाओ के अतिरिक्त मथुरा कला की गुप्तकालीन पाषाणकलाकृतियाँ भी संग्रहीत है। ये प्रतिमायें कलासौष्ठव की दृष्टि से महत्वपूर्ण कलाकृतियाँ है। इस काल को भारतीय इतिहास मे स्वर्णिम काल कहा जाता है और कला की दृष्टि से भी इस तथ्य की सत्यता सिद्ध होती है। पुनर्जागरण के इस युग मे शिल्पी ने बाह्यसौन्दर्य के साथ आन्तरिक भावनाओ के प्रदर्शन पर अधिक बल दिया। इस काल की प्रतिमाओ मे बुद्ध का शिरोभाग (१२८६), बोधिसत्व का शिरोभाग (१४५७) और देवप्रतिमा (३७२३) आदि सुन्दर कलाकृतियो मे विशेष स्थान रखती है। इस काल की सारनाथ कला मे बुद्ध प्रतिमा (११२) भी महत्वपूर्ण कलाकृति है।

यहाँ ७वी शती ई० से १०वी शती ई० तक की मथुरा कलाकृतियो मे बुद्ध प्रतिमा (१३११), विष्णु (१३१२), शेषशायी विष्णु (१२६३), आलिंगनमुद्रा मे शिव-पार्वती (१२६०) और दुर्गाप्रतिमा (४०८) भी पूर्वमध्यकालीन कलाकृतियो मे विशेष स्थान रखती है। इस काल की कन्नौज से प्राप्त प्रतिमाओ मे धर्मचक्र प्रवर्तन मुद्रा मे पद्मासन बुद्ध (१४७), विष्णु (१२५) और हरिहर का शिरोभाग (१३०८) भी पाल-कालीन कला कीं महत्वपूर्ण कलाकृतियाँ हैं। यहाँ से प्राप्त पालकला की इन कृतियो मे हम गुप्तकालीन शालीनता और गतिशीलता का अनुभव करते है। चेहरे की बनावट, केश-विन्यास, होठों की रचना और उन पर अधखिली साधारण मुस्कान तथा अल्प-आभूषणो के चित्रण, गुप्तकला की प्रत्यक्ष सीध मे है।

इन प्रतिमाओ के अतिरिक्त पाण्डुस्रोत, लालढाग, झीवरहेडी, सुलतानपुर, कागडी ग्राम, आमस्रोत तथा हरिद्वार क्षेत्र के समीपवर्ती क्षेत्रो से समय-समय पर किए गए पुरा-तात्विक सर्वेक्षण द्वारा अन्य पुरातात्विक सामग्री की भाँति पाषाण प्रतिमाएँ भी संग्रहीत की गयी है। ये प्रतिमाएँ जहाँ उत्तराखण्ड का इतिहास बताती है, वहाँ यह भी प्रति-पादित करती है कि इस क्षेत्र मे विभिन्न कालो मे बसने वाले लोगो के रीति-रिवाज क्या थे और उनके धर्म, विश्वास तथा विचार किस प्रकार के थे ? इन प्रतिमाओ से ज्ञात होता है कि किसी समय यहाँ बौद्धो का भी प्रभाव था। यहाँ जैनियो, शैवो तथा हिन्दुओ की प्रतिमाओ का भी अच्छा संग्रह है। इस संग्रह मे ८वी शती ई० से १०वी शती ई० तक की प्रतिमाएँ कला के क्षेत्र मे अपना विशेष महत्व रखती हैं।

इस काल की गगा नदी के पूर्वी तट अर्थात् बाएँ किनारे पर हरिद्वार नगर से लगभग ८–१० किलोमीटर दूर कागडी ग्राम से प्राप्त ललितासनस्थ अग्निदेव (१४६६) जिसके सिर के दोनो ओर से अग्निज्वालाएँ निकल रही हैं, सिंहारूढ दुर्गा (१४७०), आसवपाई कुबेर (१४७४), सप्तमातृका (१३२०) और पद्मपाणि शिव (१३२१) आदि प्रतिमाएँ सुन्दर कलाकृतियाँ हैं और कला के क्षेत्र मे अपना स्वतन्त्र अस्तित्व रखती हैं।

कागडी ग्राम तथा आम्रस्रोत से पाँच जैन प्रतिमाएँ भी प्राप्त हुई हैं, जिनसे यह आभास ही नही, अपितु स्पष्टरूपेण ज्ञात होता है कि कभी यह क्षेत्र जैन धर्म का केन्द्र रहा होगा। इन प्रतिमाओ मे सर्वतोभद्रिका प्रतिमा (१६४२), शीर्षहीन महावीर (१३१६), और जैन तीर्थंकर (१३१६) की प्रतिमाये भी हरिद्वार क्षेत्र की महत्वपूर्ण कलाकृतियाँ है। इन प्रतिमाओ मे सभी तीर्थंकर पद्मासन मे दर्शाए गए है।

सुलतानपुर के पूर्व मे गगा के किनारे प्राचीन टीलो की शृखला है, जहाँ से चुतुर्मुखी विद्याधर या दिग्पाल (३८०७) और विष्णुलक्ष्मी प्रतिमा (३८०८) भी इस क्षेत्र की सुन्दर कलाकृतियाँ है। यहाँ से निकट ही झीवरहेडी ग्राम से प्राप्त समुद्रमथन का पाषाणफलक (३१८०) भी हरिद्वार क्षेत्र की महत्वपूर्ण उपलब्धि है। यह फलक तो लन्दन मे हुए भारतउत्सव–वर्ष १९८२ मे प्रदर्शित किया गया। गुरुकुल के लिए यह बडे गौरव का विषय रहा।

हरिद्वार और इसके समीपवर्ती स्थलो मे श्रवणनाथ मठ, मायापुर और सतीकुण्ड आदि स्थानो से भी अनेक प्रतिमाएँ सग्रहीत की गई हैं। इन प्रतिमाओ मे बुद्ध प्रतिमा (१६५), कुबेर (१६६), शिव-पार्वती (१७१) और महिषासुरमर्दिनी (३१८१) आदि प्रतिमाएँ भी इस क्षेत्र की महत्वपूर्ण कलाकृतियाँ है। इन प्रतिमाओ को देखने से ज्ञात होता है कि यहाँ के कलाकार न केवल अग-प्रत्यगो के सुचारु प्रदर्शन मे सिद्धहस्त थे, अपितु वे पृष्ठभूमिसयोजन, अलकरण तथा भावाभिव्यक्ति के भी मर्मज्ञ थे।

अन्त मे कहा जा सकता है कि हरिद्वार क्षेत्र से प्राप्त ८वी शती ई० से १०वी शती ई० तक की पाषाणप्रतिमाओ पर प्रतिहारकालीन कला का प्रभाव है। प्रतिहार युग मे यहाँ परमपावन गगा की उपत्यका मे कतिपय देवभवनो का, प्राचीन भारतीय स्थापत्य एव शिल्प मे अथवा स्वतन्त्र अस्तित्व रहा होगा।

पुरातत्व संग्रहालय में श्रद्धानन्द वीथिका

—डा० जबरसिंह सेंगर
निदेशक, पुरातत्त्व सग्रहालय

गुरुकुल कागडी विश्वविद्यालय के सस्थापक स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज के जीवन-काल से सम्बन्धित सामग्री इस विशाल कक्ष मे प्रदर्शित की गई है। इससे पूर्व कि यहाँ की सामग्री पर कुछ लिखा जाए, उचित होगा कि स्वामी जी के जीवनवृत्त पर कुछ प्रकाश डाला जाए।

स्वामी जी के परदादा श्री सुखानन्द जी तथा पिता श्री नानकचन्द जी थे। स्वामी जी का जन्म सम्वत् १९१३ की फाल्गुन-वदी त्रयोदशी को ग्राम तलवन जिला जालधर मे हुआ था। इनका प्रारम्भिक नाम मुंशीराम था। पढने-लिखने मे आप बहुत प्रवीण थे। क्वीन्स कालेज के स्कूल से आपने हाईस्कूल (एन्ट्रेस) की परीक्षा पास की। परीक्षा जब समाप्त हुई तो उसी समय इनकी माता का देहान्त हो गया था। १८७७ मे इनका विवाह जालन्धर के प्रसिद्ध रईस ला० शालिग्राम की सुपुत्री शिवदेवी के साथ हुआ। १८८० मे मुशीराम जी नायब तहसीलदार नियुक्त हुए। १८८३ मे आपने नायब तहसीलदार के पद से त्यागपत्र दे दिया तथा फिल्लौर मे वकालत करने लगे और फिर जालन्धर आ गए।

मुशीराम जी पर लाला देवराज का प्रभाव पडा। अत १८८५ मे उन्होने आर्य समाज मे प्रवेश किया। महात्मा मुशीराम पर प० गुरुदत्त जी विद्यार्थी का विशेष प्रभाव था। श्री दुर्गाप्रसाद, श्री आत्माराम, श्री रामभज चौधरी तथा महात्मा मुशीराम ने महसूस किया कि डी०ए०वी० कालेज वैदिक शिक्षाप्रणाली से दूर होते जा रहे है। अत मुशीराम जी ने १८९७ मे 'आर्य पत्रिका' मे एक लेख प्रकाशित कर १८९८ के नवम्बर मास मे आर्य प्रतिनिधि सभा पजाब मे गुरुकुल स्थापित करने का प्रस्ताव पारित कराया। मुशीराम जी के निकटस्थ मित्र लाला रालाराम तथा राय ठाकुरदत्त लाहौर के पास गुरुकुल खोलना चाहते थे, पर महात्मा जी प्रकृति से ओतप्रोत स्थान पर गुरुकुल स्थापित करना चाहते थे। १९०१ मे पुण्यभूमि, गुरुकुल कागडी मे गुरुकुल खोलने की अनुमति आर्य प्रतिनिधि सभा ने दे दी तथा ४ मार्च १९०२ को गुरुकुल प्रारम्भ हो गया जिसमे ३० ब्रह्मचारी (स्वामी जी के २ पुत्र भी) प्रविष्ट हुए तथा प० गगादत्त जी आचार्य नियुक्त हुए। १९२४ मे गगा की बाढ के कारण यह गुरुकुल हरिद्वार के निकट गुरुकुल कागडी मे अब भी अपने वैभव को बढा रहा है।

महात्मा मुंशीराम जी १६१७ मे सन्यास लेकर स्वामी श्रद्धानन्द सरस्वती बन गए। स्वामी जी ने निडर एव त्याग की भावना से स्वतन्त्रता सग्राम मे भाग लिया। १६१६ मे अमृतसर के कांग्रेस अधिवेशन की स्वागत-समिति के सभापति बने तथा उसे सफलतापूर्वक सम्पन्न कराया। इस समय स्वामी जी की हार्दिक इच्छा थी कि गुरुकुल का कार्यभार अन्य को सौंप दिया जाए। स्वतन्त्रता सग्राम को सफल बनाने के साथ-साथ स्वामी जी हिन्दी प्रचार, दलितोद्धार, शुद्धि-सभाएँ, राष्ट्रीय एकता, हिन्दू सगठन, आदि कार्यों मे लगे रहे। स्वामी जी के इन पवित्र और अविस्मरणीय कार्यों से सम्बन्धित उनके जीवनकाल की सामग्री को इस सग्रहालय मे सजोकर रखा गया है। इसकी सम्पूर्ण सामग्री हम धनाभाव के कारण तो प्राप्त नही कर पाए, पर जो प्राप्त है वह प्रदर्शित की गई है।

स्वामी जी ने शुद्धिप्रचार एव एकता का सदेश दिल्ली की जामा मस्जिद मे भी दिया, उसका एक तैलचित्र प्रदर्शित है। इसी प्रकार स्वामी जी की विभिन्न मुद्राएँ—लेटे हुए, बैठे हुए प्रदर्शित हैं। महत्वपूर्ण चित्र १६१६ का अमृतसर काग्रेस अधिवेशन का है जिसमे स्वामी जी स्वागत समिति के अध्यक्ष थे। उनके साथ श्री गोखले, श्री मालवीय जी, श्री मोतीलाल नेहरू, प० जवाहरलाल नेहरू, मौलाना अब्दुल कलाम आजाद आदि पूज्य महा-पुरुष विराजमान है। स्वामी जी को जब गोली लगी तो मृत्यु-उपरात उनकी शवयात्रा मे अपार भीड थी, उसे प्रदर्शित किया गया है। सम्भवत. इतना जनसमूह कभी किसी शव-यात्रा मे नही देखा गया जिसमे सभी जाति के लोग थे। अगला चित्र स्वामी जी के दाहसस्कार का है जो सारे वातावरण को शात, मौन एव अवाक् बनाए हुए है। इसके बाद स्वामी जी के साथ लार्ड चेम्सफोर्ड के वे चित्र प्रदर्शित हैं जब उन्होने गुरुकुल का भ्रमण किया था। स्वामी जी के वस्त्र, खडाऊँ, चादर, झोला, कम्बल, कुर्ता, लगोटी, टोपा आदि उनके मूलरूप मे प्रदर्शित है जो उनकी सादगी को प्रदर्शित करते है। स्वामी जी को ब्रह्मदेश की कुछ कलाकृतियाँ भेटस्वरूप प्राप्त हुई थी—वह प्रदर्शित है। इसी मे एक सुभाषचन्द्र बोस की मूर्ति भी अपनी स्वतन्त्रतासग्राम के सेनानी वेष-भूषा मे शोभायमान है।

स्वामी जी से सम्बन्धित अनेक पत्रो मे से कुछ पत्रो की फोटोप्रतियाँ भी प्रदर्शित है, जिनमे प्रमुख निम्न प्रकार हैं –

गांधी संग्रहालय,
साबरमती।

श्रद्धानन्द जी,

भाई साहब,

आपका पत्र मिला। जानबूझ के जलियाँवाला बाग के लिए मैने कुछ नही लिखा है। मेरा अभिप्राय मैने जेल मे से निकलने के बाद भेज दिया था कि आज हमारे कुछ भी मकान नही बनने चाहिए। हिन्दू मुसलमान इत्यादि धर्मियो के ऐक्य का ही मकान

स्मरण चिह्न होगा । आज अगर हम कुछ भी बनाएँ तो वह झगडे का एक और कारण बन सकता है । पैसा सुरक्षित है, ऐसा मेरा ख्याल है । आजकल की हमारी गन्दी आबोहवा मे इतने से ही सन्तुष्ट रहना मुझको विशेष योग्य लगता है। आप अपना अभिप्राय मुझको भेज दे । आप ऐसा क्यो कहते हैं कि इसमे केवल मालवीय जी, मोतीलाल जी और मेरी ही जिम्मेदारी है ? आप इस तरह से छूट नही सकते हैं। कम से कम जितनी हम तीनो की इतनी तो आपकी है ही है। आपका स्वास्थ्य अच्छा होगा।

ह०

(मोहनदास करमचन्द गांधी)

हिन्दी नवजीवन

गुरुवार, पौष बदि ४, सम्वत् १९८३ | **२३ दिसम्बर, १९२६**

शहीद श्रद्धानन्द

जिसकी उम्मीद थी वह हो गुजरा । कोई ६ महीने हुए स्वामी श्रद्धानन्द जी सत्याग्रहाश्रम मे आकर दो-एक दिन ठहरे थे । बात-चीत मे उन्होने मुझसे कहा था कि उनके पास जब-तब ऐसे पत्र आया करते थे जिनमे उन्हे मार डालने की धमकी दी जाती थी। किस सुधारक के सिर पर बोली नही बोली गयी है ? इसलिए उनके ऐसे पत्र पाने मे अचम्भे की कोई बात नही थी। उनका मारा जाना कोई अनोखी बात नही है।

स्वामी जी सुधारक थे। वह कर्मवीर थे । जिसमे उनका विश्वास था, उसका वह पालन करते थे। उन विश्वासो के लिए उन्हे कष्ट झेलने पडे । वह वीरता के औतार थे । भय के सामने उन्होने कभी सिर नही झुकाया। वह योद्धा थे और योद्धा रोगशैया पर मरना नही चाहता। वह तो युद्धभूमि का मरण चाहता है।

कोई एक महीना हुआ कि स्वामी श्रद्धानन्द जी बहुत बीमार पडे। डाक्टर अन्सारी उनकी चिकित्सा करते थे । जितने अनुराग से उनसे सम्भव था, डाक्टर अंसारी उनकी सेवा करते थे। इस महीने के शुरु मे पूछने पर उनके पुत्र प्रो० इन्द्र ने तार दिया था कि स्वामी जी अब अच्छे है और मेरा प्रेम और दुआ माँगते है। मैं उनके बिना माँगे ही उन पर प्रेम और उनके लिए भगवान से प्रार्थना करता ही रहता हूँ।

भगवान को उन्हे शहीदो की मौत देनी थी । इसलिए जब अभी वे बीमार ही थे तभी हत्यारे के हाथ मारे गए, जो इस्लाम पर धार्मिक चर्चा के नाम पर उनसे मिलना चाहता था, जो स्वामी जी की प्रेरणा से आने दिया गया । जिसने प्यास मिटाने को पानी माँगने के बहाने स्वामी जी के ईमानदार नौकर धर्मसिह को पानी लेने को बाहर हटा दिया, और जिसने नौकर की गैरहाजिरी मे बिस्तर पर पडे हुए रोगी की छाती मे

दो प्राणघातक चोटें की। स्वामी जी के अन्तिम शब्दो की हमे खबर नही। मगर अगर मैं उन्हे कुछ भी पहचानता था तो मुझे बिल्कुल सन्देह नही है कि उन्होने अपने परमात्मा से उसके लिए क्षमायाचना की होगी जो यह नही जानता था कि वह पाप कर रहा है। इसलिये गीता की भाषा मे वह योद्धा धन्य है जिसे ऐसी मृत्यु प्राप्त होती है।

मृत्यु तो हमेशा ही धन्य होती है मगर उस योद्धा के लिए तो और भी अधिक जो अपने धर्म के लिए यानी सत्य के लिए मरता है। मृत्यु कोई शैतान नही है। वह तो सबसे बडी मित्र है। वह हमे कष्टो से मुक्ति देती है। हमारी इच्छा के विरुद्ध भी हमे छुटकारा दे देती है। हमे बराबर ही नई उम्मीदे नए रूप देती है। वह नीद के समान मीठी है किन्तु तो भी किसी मित्र के मरने पर शोक करने की चाल है। अगर कोई शहीद मरता है तो यह रिवाज नही रहता। अतएव इस मृत्यु पर मैं शोक नही कर सकता। स्वामी जी और उनके सम्बन्धी ईर्ष्या के पात्र है। क्योकि श्रद्धानन्द जी मर जाने के बाद भी अभी जीते है। उससे भी अधिक सच्चे रूप मे जीते है जब वे हमारे बीच अपने विशाल शरीर को लेकर घूमा करते थे। ऐसी महिमामय मृत्यु पर जिस कुल मे उनका जन्म हुआ था, जिस जाति के वे थे, वह सभी धन्यता के पात्र है। वे वीर पुरुष थे, उन्होने वीरगति पाई।

मगर इस दृश्य का एक दूसरा पट भी है। मैं अपने को मुसलमानो का मित्र समझता हूँ। वे मेरे सहोदर भाई है। उनकी भूले मेरी भूले है। उनके सुख से मै सुखी और दुःख से दुःखी होता हूँ। किसी मुसलमान के पाप से मुझे उतना ही दुःख होता है जितना कि उसे कोई हिन्दू करता। एक मुसलमान ने यह घोर कृत्य किया है। मुसलमानो के मित्र की हैसियत से मुझे इसका बहुत बडा खेद है। मृत्यु की खुशी इसलिए कम हो जाती है कि उसका कारण बना था एक भूला हुआ भाई। इसलिए धर्मबलि की चाहना नही की जा सकती। वह तो आनन्द की वस्तु तभी बनती है जब बिना बुलाए आती है। हम अपने छोटे से छोटे भाई की भूल पर हँसे नही। मगर बात तो यह है कि जब तक कोई भूल भयकर रूप धारण कर नही लेती, उसे भूल माना ही नही जाता। जब तक उसकी यथेष्ठ निन्दा नही हो लेती तब तक वह दूर नही होती।

इस काण्ड का बहुत बडा राष्ट्रीय महत्व है। जाति के जीवन को नष्ट करने वाले दोष की ओर यह हमारा ध्यान खीचता है। हिन्दू और मुसलमान दोनो को ही अपना कर्तव्य चुन लेना चाहिए। यह दोनो की ही जाँच का मौका है। क्रोध दिखला कर हिन्दू अपने धर्म का अपमान करेगे और उस एकता को रोक लेगे जो एक दिन जरूर ही आयेगी। आत्मसयम के द्वारा वे अपने आपको अपनी उपनिषदो और क्षमामूर्ति युधिष्ठिर के योग्य सिद्ध कर सकते है। एक व्यक्ति के पाप को हम सारी जाति का पाप न मान बैठे। बदला लेने के भाव हम न लावे। इसे हम एक हिन्दू के प्रति एक मुसलमान का पाप मानने के बदले एक वीर पुरुष के प्रति दूसरे भूले-भटके भाई की भूल माने।

मुसलमानो को अग्नि-परीक्षा मे से होकर निकलना पडेगा। इसमे कोई शक नही कि छुरी और पिस्तौल चलाने मे उनके हाथ जरूरत से अधिक साफ हैं। तलवार कुछ इसलाम का धर्मचिह्न नही है मगर इसलाम की पैदाइश हुई ऐसी स्थिति मे जहाँ तलवार की ही तूती थी और अब भी है। यीशु के सन्देश का भी कुछ असर नही पडा क्योकि उसे ग्रहण करने लायक योग्य परिस्थिति ही उपस्थित नही (पैगम्बर के उपदेशो के साथ भी तलवारें बहुत निकला करती हैं। इसलाम को अगर इसलाम यानी शान्ति बनना है तो उसे अपनी तलवार म्यान मे ही रखनी होगी) इसका खतरा है कि मुसलमानो के मन्त्री इस कृत्य का समर्थन ही करे। उनके लिए और ससार के लिए यह दुर्भाग्य की बात होगी क्योकि हमारा मसला सारे संसार का मसला है। अगर खुदा पर भरोसा करना है तो तलवार का भरोसा छोड़ना होगा। उनकी ओर से स्पष्ट शब्दो मे सब ओर से निन्दा के प्रस्ताव होने चाहिए।

मैं अब्दुल रशीद की ओर से भी कुछ कहना चाहता हूँ। मैं उसे जानता नही। मुझे इससे मतलब नही कि उसने क्यो मारा ? दोष हमारा है। अखबार वाले चलते-फिरते रोगाणु बन गए हैं। वे झूठ और शिकायत की तिजारत करते हैं। अपनी भाषा की गालियो के शब्दभण्डार को वे खाली कर देते और पाठको के सशयरहित और प्राय ग्रहणशील मनो मे अपने विकार चुला देते हैं। अपने भाषाधिकार के मद से मत्त नेताओ ने अपने कलम और जबान पर लगाम लगाना सीखा ही नही है। गुप्त और छल-कपटपूर्ण प्रचार को अपना काला और भयकर काम करने मे रोकथाम का सामना नही करना पडा। इसलिए हम शिक्षित और अर्द्धशिक्षित लोग ही अब्दुल रशीद की मनोवृत्ति के लिए दोषी हैं। इसका निश्चय करना कि दो विरोधी दलो मे किसका कितना दोष है, बेकार है। धर्मराज की तुला से दोषो का, *न्याय-अन्याय* का ठीक-ठीक बँटवारा कौन कर सकता है ? आत्मरक्षा के लिए झूठ बोलना या बढा कर कहना जरूरी नही है। ऐसी आशा रखना बहुत बडी बात है किन्तु स्वामी जी इतने बडे थे कि जिससे यह आशा होती है कि उनका खून हमारा पाप धो देगा, हमारे दिलो के मैल को साफ कर, मनुष्य जाति के दो बड़े विभागो को एक कर देगा। स्वामी जी के जीवन का मुझे जो ज्ञान है, उसके विषय मे अगले अक मे विचार करना पड़ेगा। (य०इ०)

(मोहनदास करमचन्द गांधी)

हिन्दी
नवजीवन
सम्पादक – मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ६ अंक २१

मुद्रक-प्रकाशक	अहमदाबाद, पौष सुदि ३, सवत् १६०३	मुद्रणालय–
स्वामी आनन्द	गुरुवार, ६ जनवरी, १६२७ ई०	नवजीवन मुद्रणालय

श्रद्धानन्द स्मारक

यह उचित ही है कि हिन्दू महासभा की ओर से स्वामी श्रद्धानन्द के स्मरण के लिए धन की सहायता माँगी जाए। स्वामी जी सन्यास-धारण के बाद जिन कामो के लिए जीते थे, उसके लिए चन्दा इकट्ठा करने का हिन्दू सभा ने निश्चय किया है। इस निश्चय के लिए मै उसे साधुवाद देता हूँ। वे काम है,—अस्पृश्यता निवारण, शुद्धि और सगठन। ५ लाख की अपील की गयी है अस्पृश्यता के लिए और शुद्धि और सगठन के लिए भी उतने की ही। जिसे साधारणत शुद्धि समझा जाता है, उस अर्थ मे शुद्धि-आन्दोलन की आवश्यकता मे मेरा विश्वास अब भी नही है। पापियो की शुद्धि निरन्तर आन्तरिक क्रिया है। उन लोगो की शुद्धि जो न तो हिन्दू ही रहना चाहते है, धर्म-परिवर्तन नही है बल्कि प्रायश्चित है। शुद्धि का तीसरा पहलू है असली धर्म परिवर्तन। इस ज्ञान और सहन युग मे मै उसकी जरूरत नही मानता। मैं धर्मपरिवर्तन का विरोधी हूँ चाहे कोई उसे हिन्दुओ मे शुद्धि, मुसलमानो मे तबलीग या क्रिस्तानो मे धर्मपरिवर्तन कहे। धर्मपरिवर्तन तो हृदय की क्रिया है और उसे केवल भगवान ही जान सकता है। उसे तो अपने आप ही छोड देना होगा। मगर धर्मपरिवर्तन पर मेरे मत प्रकाश करने का यह स्थान नहीं है। जिनका इसमे विश्वास नही है उन्हे बिना किसी विरोध के अपने रास्ते पर चलने का तब तक पूरा अधिकार है जब तक वे उचित सीमाओ के अन्दर रहते है, यानि जब तक कोई और या धोखा या लालच नही दी जाती है और जब तक दोनो पक्षो को पूरी स्वतन्त्रता है और वे सयानी उम्र और परिपक्व बुद्धि के है। इसलिए जिनका शुद्धि मे विश्वास है उन्हे इस अपील पर सहायता देने का पूरा अधिकार है।

अगर वह अपनी हस्ती अलग रखना चाहे तो हर एक सम्प्रदाय को अपना सगठन करने का पूरा अधिकार है, बल्कि उसके लिए यह परमावश्यक है। मै इससे इसलिए अलग रहा हूँ कि सगठन के विषय मे मेरे विचार कुछ अनोखे है। सख्या से अधिक गुण पर मेरा विश्वास है। आजकल सख्या पर, बल्कि गुण के बदले भी उसी पर विश्वास रखने की चाल है। समाजशास्त्र और अर्थशास्त्र मे निस्सन्देह सख्या का स्थान है। केवल मै ही इसका उस प्रकार सगठन करने मे असमर्थ हूँ जैसा कि आजकल हो रहा है। इसीलिए मेरे लिए अछूतोद्धार के ही कोष की कीमत है। इसकी अपनी निराली ही शक्ति है। हिन्दूधर्म के

सुधार और इसकी सच्ची रक्षा के लिए अछूतोद्धार सबसे बड़ी वस्तु है। इसमे सब कुछ शामिल है और इसलिए हिन्दू धर्म का यह सबसे काला दाग अगर मिट जाए तो शुद्धि और सगठन से जो कुछ मिल सकेगा, वह सब हमे इससे अपने आप ही मिल जायेगा। और मैं यह इसलिए नही कहता कि अछूतो, जिन्हे हर एक हिन्दू को गले लगाना चाहिए, की बहुत बडी सख्या है बल्कि इसलिए कि एक पुराने और असभ्य रिवाज को तोड डालने की शान और उससे होने वाली शुद्धि से कितनी ताकत मिलेगी, जो रोकी न जा सकेगी। इसलिए अस्पृश्यतानिवारण एक आध्यात्मिक क्रिया है। स्वामी जी इस सुधार के जीवित मूर्ति थे क्योकि वह इसमे आधा-साझा सुधार नही चाहते थे, वे समझौता नही कर सकते थे, दब नहीं सकते थे। अगर उनकी चलती तो वह बात की बात मे हिन्दू धर्म से अस्पृश्यता को निकाल बाहर करते। वे हर एक मन्दिर को, हर एक कुएँ को सबकी बराबरी के हक के साथ खोलते और इसका हर फल भुगत लेते। स्वामी श्रद्धानन्द जी के लिए इससे अच्छा कोई स्मारक नही सोच सकता कि हर एक हिन्दू आज से अपने दिलो मे अस्पृश्यता की अपवित्रता निकाल दे और उनके साथ सगो के समान बर्ताव करे। उस आदमी की पैसा की सहायता तो, मेरी समझ मे, अस्पृश्यता को हिन्दू धर्म से सदा के लिए निकाल डालने की उसके दृढ निश्चय का चिन्ह भर होगी।

चि० इन्द्र,

आज मुझको शान्ति है क्योकि मेरा मौन का दिन है। तुझको लिखने का दिल तो हमारा होता था परन्तु मैं शान्ति चाहता था। मैंने तुमसे शोक प्रदर्शित नही किया है। न मै करना चाहता हूँ। मै चाहता हूँ कि इस मृत्यु को हम मृत्यु न समझे। धर्म को समझने वाला तो किसी अवसर पर मृत्यु का शोक नही करेगा। परन्तु पिताजी की मृत्यु तो वीर-पुरुष के लिए अभिनन्दनीय भी हो सकती है।

और एक चीज मै तुम्हारे पास से चाहता हूँ। हृदय मे अब्दुल रशीद या मुसलमानो के प्रति रोष का स्थान न देना। तुम तो पिताजी को मेरे से ज्यादा जानते थे। परन्तु जब तक मै उनको जान सका था, उनके हृदय मे किसी मनुष्य से घृणा न थी। वही चीज मै तुमसे चाहता हूँ।

मैं यह भी चाहता हूँ कि जिस वीरता से पिताजी ने अपना कार्य किया उसी वीरता के साथ तुम भी करते रहो और उनके पवित्र स्मरणो को सुशोभित रखो।

पिताजी के अन्तिम समय का सम्पूर्ण वर्णन मै चाहता हूँ। धर्मसिंह की तबियत अब कैसा है। मै भ्रमण मे हूँ इसलिए पत्र साबरमती ही भेजना।

राहैल
सोमवार

मोहनदास करमचन्द गाँधी
का आशीर्वाद

इन पत्रो मे स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज का व्यक्तित्व मुखरित होता है । उन्होने घृणा एव पाप को कभी अपने जीवन मे फटकने नही दिया—गाँधी जी के पत्रो से स्पष्ट है ।

लार्ड चैम्सफोर्ड को उन्होंने साफ बता दिया था कि उनके राष्ट्रीय प्रेम एव भारतीय सस्कृति की रक्षा मे क्या विचार हैं ? अंग्रेज सरकार से एक पैसा भी अनुदान लेना उन्होने पाप समझा । उनके ऐसे आदर्शमय जीवन से सम्बन्धित सामग्री का प्रदर्शन इस विशाल कक्षा मे किया गया है । धन उपलब्ध होने एव सामग्री प्राप्त होने पर उसका और विस्तार किया जाएगा ।

———

पुरातत्व संग्रहालय की पाण्डुलिपियाँ

—डा० राकेशकुमार शर्मा
प्रवक्ता, इतिहास विभाग, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

गुरुकुल कागडी विश्वविद्यालय के प्राचीन भारतीय इतिहास, सस्कृति एव पुरातत्व विभाग के आधीन 'पुरातत्व संग्रहालय' का स्थान न केवल उत्तर प्रदेश अपितु समस्त भारतवर्ष के विश्वविद्यालयो के अन्तर्गत आने वाले सग्रहालयो की श्रेणी मे महत्वपूर्ण है।

जहाँ सग्रहालय के विभिन्न कक्षो मे विभिन्न वस्तुओ का सग्रह है, वहाँ हस्तलिखित ग्रन्थो का भी अच्छा सग्रह विद्यमान है। इसके अन्तर्गत अनेक ग्रन्थ अपनी प्राचीनता, विषय अथवा भाषा के दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण हैं। इस सग्रह मे विभिन्न धर्मों को प्रतिपादित करने वाली पाण्डुलिपियाँ सग्रह करने का सफल प्रयास किया गया है। इन ग्रन्थो को इनके समस्त परिचय सहित रखा गया है, जिससे न केवल दर्शक अपितु शोधार्थी भी लाभान्वित होते हैं।

हिन्दू-धर्म के विभिन्न पवित्रग्रन्थो मे बाल्मिकि द्वारा रचित 'रामायण' की कई प्राचीन प्रतियाँ सटीक तथा फारसी मे लिखित सग्रहीत है। इनमे से पडित विश्वनाथ ईशापुर वाले द्वारा लिखित "अयोध्याकाण्ड' विशेष महत्वपूर्ण है। सस्कृत भाषा मे लिखे इस ग्रन्थ का आकार 9"×8" है। 'महाभारत' के कई प्रकार के सस्करण, जिनमे फारसी अनुवाद तथा छन्दोबद्ध 'कर्ण-पर्व' विशेषत उल्लेखनीय हैं, सग्रहीत हैं।

'श्रीमद्भागवतगीता' की भी अनेक प्रतियो को प्रदर्शित किया गया है जिनमे से गुरुमुखी मे लिखित छोटे आकार 3.5"×2" की गीता, पचरत्न गीता तथा गीता (विष्णु सहस्रनाम) भी सग्रहीत है। इनकी भाषा सस्कृत है।

काश्मीरी (शारदा) लिपि मे लिखित 'प्रार्थना पुस्तक' भाषा के दृष्टिकोण से प्राचीन उदाहरण है। इसी श्रेणी मे जौनसारी भाषा मे लिखित पुस्तक 'तन्त्र-मन्त्र' विषय को प्रतिपादित करती है। इसका आकार 7"×4.5" है।

बगला हस्तलिपियो का भी सग्रहालय में अच्छा संग्रह है। इनमे 12"×4.5" के आकार वाली 'देवी-स्तोत्र' तथा 15"×3" के आकार वाली 'मनु-संहिता' विशेष रूप से

उल्लेखनीय हैं। इन ग्रन्थो मे हिन्दू-धर्म के क्षेत्रीय भाषा-भाषी लोगो मे लोकप्रियता की अच्छी झलक मिलती है।

लगभग 16वी शताब्दी मे लिखित तिब्बती भाषा की दो पाण्डुलिपियाँ, लिपि की दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय हैं जिनमे से एक 'तन्त्र-विद्या' पर आधारित पुस्तक का आकार $22'' \times 7.4''$ है।

प्राचीन पुस्तको मे 'श्रीमद्भागवत पुराण' 100 वर्षों से भी अधिक प्राचीन है। यह काश्मीरी कागज पर लिखा गया है तथा इस पाण्डुलिपि की विशेषता यह है कि इसमे अनेक प्रकार के लुभावने रंगीन चित्र भी बने है।

संस्कृत भाषा के ग्रन्थो की सूची मे 'ब्रह्मसूत्र' नामक पाण्डुलिपि भी सग्रहीत है। इसका आकार $15'' \times 6''$ है। इसी के साथ 'स्त्रोत रत्नाकर' नामक ग्रन्थ है जो कि श्री गगाप्रसाद द्वारा रचित है। इसी श्रेणी मे श्री महेलाल द्वारा हस्तलिखित 'राम चन्द्रिका' भी अवधी-देवनागरी का $10'' \times 6''$ का सुन्दर ग्रन्थ है। 'वेद गीतांजलि' नामक पुस्तक भी कम महत्वपूर्ण नही है। यह श्री वेदव्रत द्वारा रचित वैदिक धर्म पर संस्कृतभाषा की $7.5'' \times 4.5''$ के आकार की पाण्डुलिपि है।

पाण्डुलिपियो के सग्रह मे प्राचीन-काल मे लेखन हेतु प्रयुक्त होने वाले कागजो का सकलन भी ज्ञानवर्धक तथा मनोरजन का विषय है। इनमे भोजपत्र तथा ताडपत्र मुख्य है। इसी मे ताडपत्र पर उडिया भाषा मे लिखित 'तूलवीणा' नामक ग्रन्थ अपना विशिष्ट स्थान बनाए हुए है। यह भोजपत्र तथा ताडपत्र आज भी सग्रहालय मे प्राचीन हस्तलिखित कला के प्रमाण हैं।

सिख-धर्म के पवित्र साहित्य मे श्री गुरुग्रन्थसाहिब (वाणी श्री गुरुनानकदेव महाराज) की बडे आकार की प्रतियाँ सग्रहीत है। इन पाण्डुलिपियो मे एक $13'' \times 16''$ के आकार मे प्रदर्शित 'दशमग्रन्थ' सिखो के प्रसिद्ध महापुरुष श्री गोविन्दसिंह द्वारा हस्त-लिखित है। इसके अतिरिक्त गुरुअर्जुनदेव द्वारा सम्पादित एक अन्य पाण्डुलिपि भी कम महत्व की नही है। यह ग्रन्थ विक्रमी सम्वत् 1816 का है तथा इसका आकार $13.5'' \times 12.5''$ है।

हिन्दू धर्म तथा सिख धर्म के अतिरिक्त मुस्लिम धर्म के पवित्र ग्रन्थो को भी सग्रहालय मे सग्रहित किया गया है। इनमे सम्राट औरगजेब द्वारा हस्तलिखित कुरान शरीफ के मूल पृष्ठो के चित्रसहित मुद्रित हिन्दी अनुवाद की प्रतियाँ सग्रहित है। इसी श्रेणी मे 'कुरान-मजीद' भी ऐसा ही साहित्य है जो मुस्लिम-धर्म को हिन्दीभाषियो मे प्रचार करने तथा तत्कालीन धार्मिक स्थिति को स्पष्ट करता है। इनके अतिरिक्त 'फारसी गुलिस्ताँ' की कई प्रतियाँ प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थो मे उल्लेखनीय है।

सस्कृत, हिन्दी, उर्दू, बगला, तिब्बती तथा पजाबी आदि भाषाओ और लिपियो की हस्तलिखित पोथियो को शीशे के शो-केस मे सुन्दर ढग से प्रदर्शित किया गया है। चमडे जैसे पक्के और कुछ काला रग लिए एक चिकने कागज पर सुनहरी अक्षरो मे तिब्बती लिपि की एक बडी पाण्डुलिपि सग्रहीत है। इसकी लेखनशैली अत्यधिक आकर्षक है।

सग्रहालय मे उपर्युक्त सग्रह सहित लगभग 200 पाण्डुलिपियो का सग्रह है जो सस्कृत तथा अन्य भारतीय भाषाओ मे है। प्रदर्शित पाण्डुलिपियो के अतिरिक्त, शेष सग्रह को सग्रहालय मे स्थानाभाव के कारण प्रदर्शित नही किया जा सका है।

मृदिकापात्र संग्रह

ब्रजेन्द्रकुमार जैरथ
मंग्रहालय सहायक, पुरातत्त्व संग्रहालय, गुरुकुल कांगडी विश्वविद्यालय

आज का मानव लगातार प्रगति की सीढियो को लाँघता हुआ मशीनी युग से गुजर रहा है। हर छोटी-बडी वस्तु मशीनो के जरिए बहुत जल्द निर्मित हो रही है। इन मशीनो की उपयोगिता के रहते कुछ वस्तुएँ ऐसी है जो आज भी परम्परागत तरीके से मानवीय शक्ति तथा कलाकौशल के जरिये तैयार की जाती है और जो अपनी अहमियत, अपनी खबसूरती, अपने इतिहास की कहानी दोहराती है।

मानवसभ्यता के विकास की कहानी काफी कुछ प्राचीन मिट्टी के बर्तनो मे भी छिपी है। भारत मे आज भी जगह-जगह मिट्टी के बर्तन बनते है जिनकी अपनी खास विशेषता है। ये बर्तन आमतौर पर कुम्हार चाक से बनाते है। बडे बर्तन जैसे नाद तथा कुण्डे आदि पीटकर बनाए जाते है। खिलौने बनाने के लिए साँचे आदि इस्तेमाल किए जाते है।

गुरुकुल कांगडी विश्वविद्यालय के पुरातत्व सग्रहालय मे मृदिकापात्र तथा मृणमूर्ति कक्ष मे प्रागसैन्धव मृदिकापात्र से लेकर मध्यकालीन मृदिकापात्र देखने को मिलते है जिनका सक्षिप्त विवरण नीचे दिया जा रहा है।

प्रागसैन्धव मृदिकापात्र

यह काल लगभग ०-५००० ई०पू० है। इस संस्कृति के दो प्रकार के मृदिकापात्र कक्ष मे प्रदर्शित है। इन मृदिकापात्रो मे कुछ ऐसे चित्रित पात्र देखने को मिलते है जिन पर एक के अन्दर एक गोले, पत्तियो के आकार, धारीदार तथा तिरछी रेखाएँ अकित है जिनके बीच बिन्दु बना दिए गए है तथा इनके ऊपर-नीचे समानान्तर रेखाएँ बनी हुई है। इसके अलावा आडी-तिरछी लाइनो के नमूने व धारीदार रेखाएँ जिनका ऊपरी हिस्सा समानातर रेखा को छूता है, अकित है। कुछ पात्रो पर छोटे-छोटे गोले व कघी के-से आकार पूरी सतह पर अनियमित रूप से बने हुए है। इनका रग सामान्यत भूरा है।

इसके अतिरिक्त जो दूसरे किस्म के मृदिकापात्र मिलते है उनका रग भी मूलत

भूरा ही है जिस पर काले रंग से एक के अन्दर एक गोले चित्रित है जो चार बिन्दुओ पर लम्ब व समानान्तर रेखाओ से जुड़े हुए है। इसके अलावा कुछ पात्रो पर दो-दो रेखाओ के घेरे चित्रित है जिनमे एक घेरे के बीच वृत्त तथा दूसरे के बीच चतुष्कोण हैं जिनके बीच वृत्त दर्शाए गए है। इन दोनो नमूने के बीच दो समानातर रेखाएँ खिची है जिनके मध्य अपेक्षाकृत एक मोटा घेरा खिचा है। इन घेरो के नीचे एक और मोटा घेरा जिस पर पत्तियाँ लटक रही है, चित्रित हैं।

वीथिका मे जो मृदिकापात्र प्रदर्शित है उनमें सिर्फ एक पात्र के अतिरिक्त किसी भी पात्र का कोई निश्चित आकार नही है। वह एक पात्र Dish के आकार का है।

सिंधु मृदिकापात्र

इसका काल लगभग ३००० ई०पू० है। ये पात्र सर्वेक्षण के दौरान राखीगढी (हिसार), बनावली (फतेहाबाद), मिताथल (भिवानी), मानहेर (भिवानी), मिरजपुर (हिसार), पौली (जीन्द) व गिरोड (रोहतक) क्षेत्रो से एकत्रित किए गए है और ये सभी स्थान हरियाणा राज्य मे है।

सिंधु सस्कृति के प्रदर्शित मृदिकापात्र भी दो प्रकार के है। एक पर काले रग से मछली की बाह्य त्वचा का नमूना व पत्तियाँ चित्रित है। यह पात्र अति मुलायम मिट्टी व नियमित ताप मे निर्मित है। फलस्वरूप पूरी सतह भूरे रग की है। ये पात्र मुख्यत काफी भारी व मजबूत है। बडे-बडे जार, कटोरे व छोटे घडो के आकार मे ये पात्र देखने को मिलते है। इन पर चित्रकारी बहुत सावधानी से की गई है। जार के ऊपरी हिस्से पर दो मोटे घेरे काले रग मे चित्रित है जिनके बीच त्रिकोण बने हुए है। इसके अतिरिक्त बाकी हिस्से पर आडे-तिरछे नमूने चित्रित है। कटोरे पर पतले समानान्तर रेखाओ मे घेरे खिचे है व छोटे घडे पर तीन पतले घेरे दिखाई देते है। ये घेरे, घडे के ऊपरी हिस्से मे ही बने है।

दूसरे किस्म के जो पात्र मिलते हैं वह कुछ खुरदुरापन लिए है। उन पर किसी भी तरह का कोई लेप नही किया गया है। इनके लिए जो मिट्टी इस्तेमाल की गई है वह भुरभुरी, गोबर, घास अथवा रेत आदि का मिश्रण है। इन पात्रो के ठीकरो मे जो कालापन देखने को मिलता है उससे लगता है ये आग मे अच्छी तरह से पकाए नही गए।

इन पात्रो पर गीलेपन मे ही सभवत सरकण्डे, चाकू अथवा कघी आदि की सहायता से सादे चित्र अकित किए गए है जैसे कि हल्का घुमाव लिए समानान्तर रेखाएँ जो कि कही धारीदार पट्टियाँ व कही ऊपर से नीचे की ओर आती पट्टियो से कटती है। इसके अतिरिक्त अगुली के अग्रभाग के चिह्न देखने को मिलते है।

ये पात्र दौलतपुर I, मिताथल I1B, सिस्वाल I (हरियाणा), रगपुर, अहार, प्रकाश, जोखा तथा कनेवाल आदि स्थानो से प्राप्त हुए हैं।

भूरे मृदिकापात्र

ये अच्छे किस्म के भारी व मजबूत पात्र है। इनकी सामान्यत भूरी सतह है। ये पात्र अच्छी मुलायम मिट्टी से तीव्र गति के चाक पर बनाए गए है, जिसके पश्चात सामान्य ताप मे पकाया गया है। लेकिन कुछ पात्र निम्नस्तरीय मिट्टी से भी निर्मित हैं।

ये पात्र सामान्यत बडे मटके, जार के आकार मे है। कुछ ऐसे पात्रो के टुकडे भी मिले है जिनमे सुराख बने है। परन्तु इनके आकार का अनुमान लगाना मुश्किल है। ये पात्र जो यहाँ प्रदर्शित है, हरियाणा राज्य से मिले है।

अभ्रकमिश्रित मृदपात्र

कुछ मृदभाण्ड अभ्रकमिश्रित मिट्टी से (Micaceous Red ware) से बनाये गये है और ये काले रग से चित्रित है। एक मृदिकापात्र जिसका कोई आकार नही है, पर चित्रित एक मोटा घेरा, तीन पतले सफेद रग के घेरो से काटा गया है।

भूरे पात्र

कुछ Grey Ware के मृदिकापात्र भी यहाँ दर्शाए गए है। ये विभिन्न आकारो मे है जैसे कि बडे जार, घडे, तश्तरी, पैददार तश्तरी का एक हिस्सा और कटोरे आदि मे देखने को मिलते है।

मृदिकापात्रो के अलावा, मृणमूर्तियाँ तथा पत्थर की वस्तुएँ मुख्य है।

मृणमूर्तियो मे केक्स (Cakes), डिस्क के आकार मे पात्र, स्किन रबर (Skin rubbers), मनके, पहिये व चूडियाँ आदि शामिल है।

टेराकोटा केक्स (Terracotta Cakes) *की सख्या* चार है। Pottery discs विभिन्न आकार मे है। समवत यह बच्चो द्वारा किसी खेल मे प्रयोग की जाती थी। Pottery discs मे आठ तो पूर्णत: साबुत नमूने है और सात टूटे हुए है।

दो Skin rubbers भी यहाँ प्रदर्शित है जिनमे एक तो टूटा हुआ है और एक साबुत है। इसके अतिरिक्त मृणमूर्तियों के बने मनके प्रदर्शित है। दो नमूने पहियो के है

जो अलग-अलग आकार मे हैं। चूड़ियाँ भी दो प्रकार की देखने को मिलती है। एक तो Glazed लेप से बनाई गयी हैं तथा दूसरी Terracotta से। Glazed लेप की चूडियो की सख्या १२ है और सभी टूटी हुई है। Terracotta चूडियो की सख्या ६ है तथा वे विभिन्न आकारो मे हैं।

नसीरपुर—

इस स्थान से सर्वेक्षण के दौरान गेरुये रंग के मृदिकापात्र प्राप्त हुए है। यह स्थान, तालुका मगलौर (जिला सहारनपुर) मे स्थित है। सन १९५० मे बी०बी० लाल ने दो Copper-hoards Sites पर प्रयोगात्मक उत्खनन किया। ये स्थान बसौली (जिला बदायूँ) तथा राजपुर-परसु (जिला बिजनौर) उ० प्र० मे हैं। यहाँ उत्खनन के दौरान कुछ नए किस्म के मृदभाण्ड मिले, जिनका नाम गेरुये रग के मृदभाण्ड रखा गया, (Lal—1951 : 36–39)। यह मृदिकापात्र medium grained मिट्टी का बना हुआ व कम आग मे तपाया गया था। उत्खनन से प्राप्त हुए मृदभाण्ड खराब दशा मे तथा rolled थे। मृदिकापात्र पर ochre का पतला लेप था जिसका रग नारगी-लाल से गहरे लाल तक मिलता है। ऐसे ही पात्र हस्तिनापुर से भी मिले है (Lal—1954–35–10)।

इस उत्खनन से 40 नए क्षेत्रो का पता मिलता है। पात्रो का विस्तारक्षेत्र पूर्व मे मायापुर (जिला सहारनपुर) से लेकर दक्षिण मे सैपई (जिला इटावा) तक फैला हुआ है।

गेरुये रग के मृदभाण्ड वाली सस्कृति का प्रारम्भ साधारणतया नदियो के किनारे पाया जाता है और आकार मे (200 × 200m) बहुत छोटे है। (Dikshit–1979—1 : 286)। टीलो की ऊँचाई कम है और बहुत से स्थानो जैसे बहादराबाद, बिसौली, राजपुर-परसु और सैपई मे किसी टीले का कोई चिह्नमात्र भी नजर नही आता।

पात्रो को बनाने मे इस्तेमाल की गई मिट्टी काफी मुलायम है परन्तु समानरूप से आग मे तपे हुए नही है। Fabric medium है तथा मटको पर प्राय. लेप किया गया है। कही-कही मोटा लेप प्रयोग मे लाया गया है।

नसीरपुर से जो पात्र प्राप्त हुए है वे मुख्यत घडे, सग्रहण जग, घड़े के आधार आदि के आकार मे है।

अहार संस्कृति—राजस्थान—

यह स्थान उदयपुर के निकट है। यहाँ पर श्री आर०सी० अग्रवाल ने उत्खनन

किया था। इस उत्खनन के दौरान काले और लाल एवं सफेद चित्रित पात्र व Burnished लाल व काले पात्र हैं। ये मृदिकापात्र कटोरे व घड़े के विभिन्न आकारो मे हैं। इन पर सामान्यत. समानान्तर काले घेरे चित्रित हैं।

कुन्दनपुर टीप (बिजनौर) —

इस स्थान पर सर्वेक्षण के दौरान Cholerlithic मृदभाण्ड व Historic मृदभाण्ड प्राप्त हुए।

Cholerlithic मृदभाण्डो मे ऐसे पात्र मिलते है जिन पर गीली अवस्था मे ही फूल, तने व कघी आदि अकित किए गए है। सिर्फ एक पात्र जिसका कोई निश्चित आकार नही है, तथा Grey ware का है, प्रदर्शित है।

ऐतिहासिक (Historic) पात्रो मे खुरदुरे लाल पात्र, चित्रित लाल पात्र, Burnished काला पात्र व मुस्लिम चमकदार पालिश के पात्र प्राप्त हुए है। जो चित्रित लाल मृदिकापात्र थे वे सब मटके के आकार मे थे। यद्यपि कुछ पात्र खराब हालत मे भी है, इन पर काले रग से चित्रकारी की गई है।

एक खूबसूरत मृदभाण्ड जो कि मध्यम आकार का जग है, अति शोभाजनक है। इसके अलावा सग्रहणपात्र, मटके, छोटे कटोरे तथा सम्भवत मटके के ढक्कन तथा साथ ही साथ एक बडा स्वास्तिका भी प्राप्त हुए है।

सरसावा—

यह एक प्राचीन स्थान है तथा जिला सहारनपुर के अन्तर्गत आता है। इस गॉव मे सर्वेक्षण के दौरान एक प्राचीन टीला पाया गया। यह टीला, गाव से लगभग 50 मीटर की दूरी पर, पश्चिम दिशा मे स्थित है।

टीले का क्षेत्रफल लगभग 2 Km.×1·5Km. तक फैला हुआ है। टीले के बीच मे एक कच्ची सडक बनी हुई है। इसी कारण टीले का Section दृष्टिगत हुआ है। इस Section की ऊँचाई लगभग 2·25 मीटर है। Section के निचले हिस्से से सादे Grey पात्र, चित्रित भूरे रग के पात्र, काले व लाल पात्र (Black and Red ware), Northern Black Polished Ware, खुरदुरे लाल पात्र, Incised लाल पात्र, Burnished लाल पात्र, चित्रित लाल पात्र तथा मुस्लिम चमकदार पालिश के पात्र प्राप्त हुए है जो मुख्यत: कटोरे, मटके, तश्तरी व ढक्कन आदि के आकारो मे है। इसके अलावा कुछ मध्यकाल के मृदभाण्ड भी मिले हैं।

चित्रित धूसरपात्र—

चित्रित धूसरपात्र की उत्पत्ति का समय लगभग १०००–१५०० ई०पू० माना गया है। इनमे कटोरो पर जो चित्रकारी की गई है उसमे Concentric चक्र तिरछी धारियो से जुडे हैं तथा एक काला घेरा पात्र के ऊपरी, भीतरी हिस्से पर चित्रित है।

Northern Black Polished Ware सरसावा के अतिरिक्त राखीगढी (हिसार) तथा गोरोड (रोहतक) हरियाणा से भी प्राप्त हुए हैं।

वीरभद्र (देहरादून)—

इस स्थान से सर्वेक्षण के दौरान जो मृदिकापात्र प्राप्त हुए, उनमे सादे लाल पात्र व चित्रित लाल पात्र है, जो मटके, सग्रहणपात्र, डिश, पेंचे पर डिश, पात्र-आधार, गहरे कटोरे, पात्रो के टूटे हत्थे, मटके के ढक्कन आदि आकार मे है।

इन पात्र का निर्माणकाल 75 BC – 600 AD माना गया है।

प्रारम्भिक ऐतिहासिककाल—

ये मृदिकापात्र विभिन्न प्रकार के है। जैसे – खुरदुरे लाल पात्र, सादे लाल पात्र, चित्रित लाल पात्र, फूलदान, कटोरे, खूबसूरत छोटा मटका आदि आकार मे है जिन पर काले रग से क्षैतिज रेखाएँ बनी है जिनके बीच मे एक धारीदार रेखा बनी है।

मध्यकालीन मृदिकापात्र—

यह मृदिकापात्र दो स्थानो से सर्वेक्षण के दौरान प्राप्त किए गए। ये स्थान हैं—राखीगढी (हिसार) व गिरोड़ (रोहतक) दोनो स्थान हरियाणा राज्य मे हैं।

इनमें अंकित लाल पात्र व मुस्लिम चमकदार पालिश किए पात्र मिले है।

पाँच मनके जो प्रागैतिहासिक काल के है यहाँ प्रदर्शित है। इसके अतिरिक्त, ईंटे, जो क्रमश. शुंगा (कौशाम्बी), कुशान (कौशाम्बी) तथा गुप्तकाल (वीरभद्र-देहरादून) की है, यहाँ प्रदर्शित है।

गुरुकुल संग्रहालय की मुद्रा-वीथिका

डा० सुखवीर सिंह
सहायक क्यूरेटर, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय संग्रहालय

धातु के एक निश्चित आकार के टुकडे, जिनके भार एव मूल्य की प्रामाणिकता किसी सगठन या सत्ता द्वारा की गई हो, सिक्के कहलाते हैं। सिक्को का चलन मनुष्य की बदली आवश्यकताओ की आपूर्ति मे विनिमय की कठिनाइयो का प्रतिफल है। उत्खनन एव साहित्य के प्रमाणो के अनुरूप भारत मे सिक्को का प्रचलन अब से लगभग २५०० वर्ष पूर्व से हुआ। तब से निरन्तर ये प्रसरण मे रहे है।

प्राचीन भारतीय इतिहास के निर्माण मे भी इन्होने महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की है। इनसे तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक तथा धार्मिक दशा का अच्छा परिचय प्राप्त होता है। कभी-कभी तत्कालीन कला और साहित्य पर भी इनसे प्रकाश पडता है। प्राचीन भारतीय इतिहास में अनेक ऐसे स्थल है जिनकी जानकारी केवल सिक्को के माध्यम से ही हुई है। राजनीतिक परिवर्तनो के साथ ही ये सिक्के विभिन्न नामो से पुकारे गए है, जैसे निष्क, सलमान, दीनार, मोहर एव रुपया आदि।

वर्तमान समय मे इस संग्रहालय की मुद्रावीथिका मे विभिन्न धातुओ के ४०४३ सिक्के संग्रहीत किए गए है। इन सिक्को को क्रय, उपहारस्वरूप तथा पुरातात्विक सर्वेक्षण द्वारा प्राप्त किया गया है। इन सिक्को मे आरम्भिक आहत (पचमार्क) मुद्राओ से लेकर अर्वाचीनकाल तक के सिक्के सग्रहीत हैं। इस समस्त सग्रह को चार उपविभागो मे विभक्त किया गया है—प्राचीन, मध्य, वर्तमान और विदेशी। इनमे प्राचीन आहत मुद्राएँ पुरातात्विक क्षेत्र मे विशेष महत्त्व रखती है। इस सग्रहालय मे लगभग १३० आहत मुद्राये संग्रहित की गयी हैं।

प्राचीनतम भारतीय मुद्राये (ई० पू० २०० से ६०० तक) चादी एव ताम्र के विभिन्न आकारो की आहत मुद्राये है। इन पर एक ओर सामान्यत ५ चिन्ह है तथा दूसरी ओर एक से लेकर बारह तक चिन्ह है। इन्हे पण, पाद एव मासक कहा गया। भार मे एक पाद ५० ५२ ग्रेन तथा मासक २ या ३ ग्रेन होता था। इनमे प्रमुख आकार शलाका एव प्याला प्रकार है, यद्यपि ये गोल, वर्गाकार, आयताकार आकारो मे भी मिलते है। बढती आवश्यकता के कारण शीघ्र ही आहत मुद्राये साचे से ढालकर बनायी जाने लगी। इसी कोटि मे ही आगे चलकर लेखविहीन ताबे के ढलुवा एव जनपदीय सिक्के मिलते हैं।

छठी शती ई० पू० में उत्तर भारत मे छोटे-छोटे राज्य स्थापित हो गए जिनके द्वारा चलाये गये सिक्को पर ब्राह्मी भाषा मे राजा का नाम एवं राज्य के चिन्ह पृष्ट भाग पर एव पुरोभाग पर देवता की आकृति प्रदर्शित की गई। पाणिनि (चौथी शती ई० पू०) ने भी अपने एक सूत्र मे आहत कार्षापण का उल्लेख किया है। इन मुद्राओं को देखकर पाणिनि के "रूपादाहत प्रशसयोर्यप्" सूत्र का अर्थ ठीक प्रकार मे समझा जा सकता है।

यहाँ कुषाणकालीन सिक्के भी अपना विशिष्ट महत्त्व रखते हैं। भारत मे विदेशी आक्रमणकारियो के रूप मे ग्रीक, सीथियन, पार्थियन एवं कुषाणो के आगमन से सिक्को के निर्माण में निखार आया और यहाँ सोने, चाँदी, ताँबे एव मिश्रित धातुओ के सिक्के भी चलन मे आये, जिन्हे क्रमश स्टेटर, ड्रकम, चेलकाल एव ओबोल नाम दिया गया। इन पर राजा की आकृति एव लेख एक ओर, और देवता दूसरी ओर उकेरे गए हैं। इस सग्रहालय में वीमकडफाइसिस, कनिष्क, हुविष्क और वासुदेव आदि कुषाणराजाओ के सिक्के सग्रहीत हैं। ये अधिकतर ताँबे के हैं जो तत्कालीन आर्थिक स्थिति के साथ-साथ प्रतिमाविज्ञान के भी सजीव प्रमाण हैं। यहाँ राष्ट्रकूट एव यौधेयो के सिक्के भी दर्शनीय है।

भारत मे गुप्तशासको का समय सिक्को के इतिहास मे भी विभिन्नताओ और कारीगरी के लिए विशेष महत्त्व रखता है। इस समय के भी अनेक सिक्के सग्रहीत है। इन सिक्कों को देखने से स्पष्ट होता है कि इस काल के शासको ने सिक्को से विदेशीपन मिटाकर भारतीय परम्परा के अनुसार ही बनवाया। इन सिक्को मे चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य की धनुर्धर शैली की स्वर्णमुद्रा और स्कन्दगुप्त की धनुर्धर शैली का ताम्र सिक्का भी दर्शनीय है। इस समय के सोने के सिक्के दीनार कहलाये, ये वजन मे कुषाणकालीन सिक्को जैसे ही है। इस समय के चाँदी तथा ताँबे के सिक्के भी सग्रहीत है। इनमे से कुछ सिक्के वे है जो चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य ने पश्चिमी क्षत्रपो को हराने के बाद चलाये, जो आकार एव माप मे छोटे है।

भारत के विविध युगो तथा प्रदेशो और गणतन्त्र मे विलीन तत्कालीन रियासतो तथा शासनखण्डो के सिक्को मे कुछ उल्लेखनीय है—इन्दौर, गोरखपुर, कन्नौज, उदयपुर, मैसूर, ट्रावनकोर, सौराष्ट्र, गुजरात, बडौदा, नेपाल, हैदराबाद, जोधपुर, देवास, झाँसी, मालवा, भरतपुर, नवानगर, पोरबन्दर, नाभा, रतलाम, मालेर कोटला, टिहरी, भोपाल, टौंक, बीकानेर, उज्जैन, जैसलमेर, पटियाला, चित्रकूट आदि।

सग्रहालय मे कन्नौज और गुर्जर प्रतिहार राजाओ के सिक्के भी सग्रहीत है। यहाँ मध्यकालीन सिक्को मे वृषभ एव अश्वारोही प्रकार के सिक्को मे, गुलाम वश, खिलजी वश तथा तुगलक वश आदि के अनेक सिक्के सग्रह किए गए हैं। मुस्लिम सिक्को पर अरबी

भाषा मे लेख अकित किए गए है, जिनमे एक ओर राजा का नाम, टकसाल का नाम, अको एव शब्दो मे तिथियाँ तथा एक ओर कलमा मिलता है। इस प्रकार के मुस्लिम शासको के कुछ नाम उल्लेखनीय है जिनकी मुद्राएँ तत्कालीन मुद्राकला की सम्यक् रूप है—

बलवन, अलाउद्दीन खिलजी, शम्सुद्दीन अल्तमश, गयासुद्दीन तुगलक, मोहम्मद तुगलक, इस्लामशाह, मुबारकशाह, फिरोजशाह, बहलोलशाह, शेरशाह, अकबर, जहाँगीर आदि।

यहाँ विश्व के कुछ देशो की भी मुद्राएँ सग्रह की गई है और वे ससार की मुद्राकला तथा उसके वैविध्य को एक ही स्थान पर प्रस्तुत करती है। उनमे से है ग्रेट ब्रिटेन, इग्लैण्ड, आस्ट्रेलिया, निदरलैण्ड, न्यूजीलैण्ड, बोर्नियो, नार्वे, सघाई, फ्रासिसी, हिन्द-चीन, साइप्रस, ईरान, अफगानिस्तान, एशियाई टर्की, फिलिस्तीन, मिश्र, जापान, चीन, जर्मनी, हगरी, बेल्जियम, पुर्तगाल, डेनमार्क, रूस, अमेरिका, मौरिशस, फ्रास, टर्की, आर्जन्टाइना, बिलोचिस्तान, यूनान, कनाडा, अफ्रीका, हालैण्ड, लेबनान, इण्डोचायना, कागो, अबोसीनिया, पाकिस्तान, मलाया आदि।

इनके अतिरिक्त अनेक मुद्राएँ ऐसी भी है जो भारत मे ब्रिटिश शासन के समय विदेशी शासको, जैसे विक्टोरिया, एडवर्ड, जार्ज आदि ने निर्माण कराके प्रचलित की थी। ये अधिकतर ताम्रनिर्मित है और अनेक मुद्राएँ बहुत साफ तथा सुन्दर दृश्यो से युक्त है। ये दर्शको को भारत पर विदेशीसत्ता का स्मरण दिलाती है।

इन मुद्राओ के अतिरिक्त इस वीथिका मे कुछ देशो के नोट भी प्रदर्शित किए गए है। यहाँ मुद्राओ तथा नोटो का यह बृहद् सग्रह, जहाँ मुद्राशास्त्र के ज्ञाताओ के लिए शोधकार्य मे सहायक है, वहाँ जनसाधारण के लिए ज्ञानवर्धक और मनोरजक भी है। सग्रहालय मे सग्रहीत नोट मुख्यतया इटली, जापान, रूस, फ्रास, हागकाग, यूनान, स्याम, मौरिशस, अफगानिस्तान, जर्मनी, चीन, नेपाल आदि देशो के है।

हरिहर-हिरण्यगर्भ

शशिकान्त पाठक एवं अनामिका पाठक

राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली

भारत मे समय-समय पर विभिन्न धर्मों के मध्य धार्मिक सामजस्य एव सद्भावनाएँ बनती रही है, प्रतीक रूप मे अनेक युग्म-प्रतिमाओ का निर्माण हुआ। हरिहर हिरण्यगर्भ शीर्षक मूर्ति ब्राह्मणधर्म के विभिन्न सम्प्रदाओ के मध्य धार्मिक सामजस्य का भाव व्यक्त करने वाली मूर्तियो मे से एक है। धार्मिक सहिष्णुता की इस विचारधारा का उद्भव गुप्तकालीन कला मे परिलक्षित होता है। एक स्तम्भ के चारो ओर ब्रह्मा, विष्णु, शिव एव सूर्य की मूर्तियाँ उकेरी गई है। ऐमी एक मूर्ति राष्ट्रीय सग्रहालय मे सग्रहीत है।[1] कालान्तर मे एक ही मूर्ति मे इन चारो देवताओ का समावेश किया गया। ऐसी ही एक मूर्ति का वर्णन यहाँ पर किया गया है और जो राष्ट्रीय सग्रहालय मे सुरक्षित है।

त्रिमुखी एवम् अष्टभुजी यह देवप्रतिमा योगासनमुद्रा मे कमलासन पर असीन है (चित्र सख्या १)। चतुर्थ मुख की कल्पना पीछे की ओर की गई है। सभी शीर्ष मुकुटधारण किए हुए है एव विभिन्न आभूषणो से सुसज्जित है। सबसे ऊपर के हाथो मे चक्र एव गदा है जो कि विष्णु का प्रतिनिधित्व करते है, इसके पश्चात् के दोनो हाथ कमलपुष्प से सुसज्जित है जो कि सूर्य का प्रतीक है, तीसरी जोड़ी हाथ सर्प एव खडित आयुध, सम्भवत खट्वाग से युक्त है जो कि शिव का द्योतक है। सबसे नीचे के हाथ कलश एव माला को पकडे हुए है जो कि ब्रह्मा के परिचायक है। इन आयुधो के अतिरिक्त इन देवताओ के वाहन भी इन देवताओ की उपस्थिति का ज्ञान कराते है। कमलासन के ठीक नीचे दाहिनी ओर नन्दी एव गरुड तथा बायी ओर हस एव अश्व विद्यमान है। यह प्रतिमा दो अर्धस्तम्भो के मध्य बने हुए प्रकोष्ठ मे उकेरी गई है। इस प्रकोष्ठ के बाहरी ओर व्याल की आकृतियाँ बनी हुई है। ऊपर की ओर ज्यामिती के अलकरण से सुसज्जित शिखर है। इसकी पूरी वास्तुकला अपने आप मे एक मन्दिर के समान है। राजस्थान की यह प्रतिमा 15वी शती की है।

इस प्रतिमा मे कलाकार ने चारो देवताओ ब्रह्मा, विष्णु, महेश एव सूर्य का समावेश किया है, अत यह प्रतिमा हरिहर-हिरण्यगर्भ की है। तेरहवी शती के भुवनदेवकृत अपराजितपृच्छा मे इस प्रकार की प्रतिमा को हरिहर-हिरण्यगर्भ नाम दिया गया है।[2]

चतुर्वक्त्रं चाष्टबाहुं चतुष्केकनिवासनम् ।
ऋग्वागतो मुखः कार्यः पद्महस्तो दिवाकरः ॥
खट्वांगत्रिशूलहस्तो रूद्रो दक्षिणातः शुभः ।
कमण्डलुं चाक्षसूत्रमपरे स्यात् पितामहः ॥
वामे तु संस्थितश्चव शखचक्रधरो हरिः ।

(२१३, ३२-३४)

अर्थात् हरिहर-हिरण्यगर्भ की प्रतिमा चतुर्मुखी और अष्टमुजी हों और इसमें चारो देवताओं का निवास हो, सामने की ओर सूर्य दो (प्राकृतिक) हाथो मे पद्म, दाईं ओर शिव खट्वांग और त्रिशूल, बाईं ओर विष्णु शख और चक्र तथा (पीछे की ओर) ब्रह्मा कमण्डलु और अक्षमाला धारण किए हुए चित्रित हो। त्रिमूर्ति के साथ सूर्य की एकात्मकता का उल्लेख शास्त्रो मे मिलता है। मार्तण्डपुराण मे सूर्य के त्रिधास्वरूप को ही ब्रह्मा, शिव एव विष्णु का शरीर बताया गया है।[3] शरदातिलकतंत्र के एक मत्र मे भी ब्रह्मा, शिव एव विष्णु के साथ सूर्य की एकात्मकता का उल्लेख हुआ है।[4]

वेदत्पादं चतुर्थ्यन्तं ब्रह्माविष्णुशिवात्मकम् ॥
सौराय योगपीठाय नमः पदमनन्तरम् ।
पीठमन्त्रोऽ यमाख्यातो दिनेशस्य जगत्पते ॥

(१४ - ४१ - ४२)

शिव, विष्णु और ब्रह्मा से सयुक्त सूर्य की प्रतिमा का विवरण शिल्प-शास्त्रो मे भी मिलता है। ऋ वेद में भी सूर्य के सदर्भ मे एक स्थल पर कहा गया है कि ऋषि आदि वस्तुत एक ही अनन्तेश्वर को विभिन्न रूपों में देखते रहे है। वे अपनी दृष्टि के अनुरूप कभी इन्द्र, कभी अग्नि, कभी यम का नाम दिया करते है। राष्ट्रीय सग्रहालय की मूर्ति के आयुधो मे शख एव त्रिशूल के स्थान पर गदा एव सर्प का चित्रण है। परन्तु दोनों ही आयुध दोनो देवताओं का समानरूप से प्रतिनिधित्व करते है, अत यह विविधता इसके पहचानने में कोई बाधा उत्पन्न नही करती है।

मध्यकाल मे निर्मित युग्म-प्रतिमाये बहुतायत मे मिलती हैं जिनसे तत्कालीन धार्मिक सहिष्णुता का आभास होता है। खजुराहो से इस प्रकार की छ प्रतिमाये प्राप्त हुई है।[5] जिनमे से चार स्थानक हैं और दो आसन पर विद्यमान हैं। खजुराहो के प्रतापेश्वर मन्दिर की जगती मे जुडी इसी प्रकार की प्रतिमा का सुन्दर चित्रण मिलता है (चित्र-२)। इसमें देवता पद्मपीठ पर पद्मासन मुद्रा में बैठे है। इसके तीन मुख और आठ भुजाएँ है। दो हाथो में पूर्ण विकसित पद्म रहे है जो कि अब टूटे हुए है। शेष तीन दाएँ हाथो मे अक्षमालायुक्त वरद-मुद्रा, चक्र और त्रिशूल धारण किए है। बाएँ हाथो मे क्रमश सर्प, शख,

और कमण्डलु है। पद्मपीठ के नीचे सप्ताश्व उत्कीर्ण हैं। इस प्रतिमा एवं राष्ट्रीय संग्रहालय की प्रतिमा के आयुधों में थोड़ा-सा अन्तर है। इसमें विष्णु की गदा के स्थान पर शंख, शिव के खट्वांग के स्थान पर त्रिशूल है। इस मूर्ति में सूर्य को प्रमुखता दी गई है क्योंकि पद्मपीठ में नीचे सप्ताश्व उत्कीर्ण है। जबकि राष्ट्रीय संग्रहालय की प्रतिमा में सभी देवताओं को बराबर स्थान दिया गया है। इसी प्रकार की एक अन्य मूर्ति खजुराहो के दूलादेव मन्दिर में स्थापित हैं।[6] आयुधों एवं धारण करने के क्रम के अन्तर को क्षेत्रीय विविधता के रूप में लिया जा सकता है। गुजरात के ढेलमल स्थल में लिम्बोजी माता मन्दिर में भी इसी प्रकार की मूर्ति (चित्र संख्या ३) है, जिसमें तीन मुखवाली एवं अष्टभुजा वाली यह प्रतिमा कमलपुष्प, त्रिशूल, सर्प एवं कलश से युक्त योगासन में विद्यमान है। एक हाथ वरदमुद्रा में है तथा दो अन्य खण्डित हाथों में विष्णु के आयुध रहे होंगे।[7] इस मूर्ति में प्रस्तुत मूर्ति के समान गरुड, हंस एवं नन्दी वाहनों के रूप में आसन के नीचे विद्यमान है। सूर्य के वाहन अश्व का यहाँ अभाव है किन्तु पैरों में जूते एवं कमलपुष्प सूर्य का पूर्ण आभास कराते है।

झाँसी जिले के चंदपुर से 10वीं शती की हरिहर-हिरण्यगर्भ की एक प्रतिमा स्थानकमुद्रा में प्राप्त हुई है।[8] सारनाथ संग्रहालय में भी एक प्रतिमा संग्रहीत है[9] जिसमें सूर्य को विशिष्टता मिली है जबकि राष्ट्रीय संग्रहालय की इस प्रतिमा में चारों इष्टदेवों को बराबर स्थान मिला है, यही इस प्रतिमा की विशिष्टता है।

महाराष्ट्र के चांदा जिले के मार्कन्डा मन्दिर से प्राप्त हरिहर-हिरण्यगर्भ की मूर्ति में सप्ताश्व एवं सारथी अरुण का भी चित्रण है। विभिन्न क्षेत्रों से प्राप्त इन मूर्तियों के अलावा गुजरात, महाराष्ट्र[10] राजस्थान[11], मध्यप्रदेश यहाँ तक कि दक्षिण भारत में भी इस युग्मप्रतिमाओं के निर्माण की विचारधारा को बल मिला और जिसके फलस्वरूप अनेक ऐसी प्रतिमाओं का अंकन किया गया। विभिन्न धर्मों के मध्य सौहार्द की भावना फैलाने हेतु इन प्रतिमाओं के अर्चन को प्राथमिकता दी गई।

सन्दर्भ—

१ सी० शिवराममूर्ति, राष्ट्रीय संग्रहालय बुलेटिन अंक – ३, पृष्ठ — १-७।

२ भुवनदेव, अपराजितपृच्छा, २१३, ३२-३४, गा०ओ०सि० बड़ौदा, १९५०।

३ मार्तण्डपुराण, १०६, ७२।

४ आर्थर एवलोन, शरदातिलकतन्त्र, १४; ४१-४२, कलकत्ता, १९३३।

५ रामश्रय अवस्थी, खजुराहो की देव-प्रतिमाएँ, पृष्ठ — १७७-१८१, आगरा, १९६७।

६. उर्मिला अग्रवाल, खजुराहो स्कल्पचर्स एण्ड देयर सिगनीफिकेन्स, पृष्ठ — १०६, चित्र संख्या ७६, नई दिल्ली — १९८०।

७ आर्कियोलाजिकल सर्वे आफ वेस्टर्न इण्डिया, अंक—६, आर्गकंलेक्चरल एन्टीक्यूटीस आफ नार्दन गुजरात, पृष्ठ—८८-८६।

८ एस०बी० सिंह, "एनकौटिक आईकोनस इन उत्तर प्रदेश" ईस्ट एण्ड वेस्ट, अक २३, न: ३-४, १६७३।

६. वही।

१०. रामश्रय अवस्थी, खजुराहो की देव-प्रतिमाएँ, १७६-१८१, आगरा, १६६७।

११ एस०आई०आई० जे०जी०, पृष्ठ—२३६, चित्र सख्या १४४।

१२. आर०सी० अग्रवाल, अदर लाइब्रेरी बुलेटिन, अक—१८, पार्ट—३-४, पृष्ठ—२५६-६०।

अन्त मे डा० शशि अस्थाना (सग्रहपाल, राष्ट्रीय सग्रहालय, नई दिल्ली) के सहयोग एव प्रोत्साहन के लिए और श्री एन० शाह (फोटो आफिसर, राष्ट्रीय सग्रहालय, नई दिल्ली) के फोटोसहयोग हेतु आभार व्यक्त करना चाहते है जिनके सहयोग बिना यह शोध पूरा हो पाना कठिन था।

संस्कृति के विविध आयाम

डा० सन्तराम वैश्य
प्राध्यापक, हिन्दी विभाग, गु० का० वि० हरिद्वार

संस्कृति मूलरूप से इतिहास का अग है, किन्तु इसका क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। इसमे साहित्य, सगीत, कला, धर्म, दर्शन, लोकवार्ता, राजनीति, अर्थनीति आदि सभी का समावेश होता है। धर्म, साहित्य, राजनैतिक परिस्थिति तथा सामाजिक सगठन—ये चार कसौटियाँ है जिनसे सस्कृति के इतिहास का पता चलता है। इसमे से धर्म के अन्तर्गत दर्शन; साहित्य मे भाषा, तथा सामाजिक सगठन मे जाति-व्यवस्था एव शिक्षा, कला आदि का भी समावेश हो सकता है। कला, साहित्य एव विभिन्न सस्थाएँ, सस्कृति के कार्य है जो इसको परिच्छिन्न तथा मूर्तरूप देते है। सस्कृति मानव के सामाजिक व्यवहारो को निश्चित करती है, उनकी सस्थाओ को चलाती है, साहित्य तथा भाषा का निर्माण करती है तथा जीवन के आदर्श एव सिद्धान्तो को प्रकाश देती है। निश्चय ही सस्कृति का धर्म, दर्शन, कला, साहित्य, सगीत इत्यादि से बडा घनिष्ठ सम्बन्ध है।

सस्कृति और साहित्य—

सस्कृति ने ही साहित्य को जन्म दिया है। इस नाते साहित्य भी संस्कृति के विकास मे अपूर्व योग देता है। साहित्य मे हमे जहाँ समाज के दर्शन होते है वही उसमे परोक्षरूप से सस्कृति की भी झलक मिलती है। सस्कृति समाज की आत्मा तथा उसका व्यक्तित्व है। "सस्कृति की अभिव्यक्ति साहित्य मे होती है तो साहित्य के द्वारा सस्कृति का पोषण भी होता है। साहित्य जहाँ जीवन का प्रतिनिधित्व करता है, वहाँ उसका सचालक भी है। जहाँ वह सस्कृति का चित्र खीचता है वहाँ उसे प्रेरणा भी देता है। सस्कृति के सभी सत्-तत्त्व साहित्य मे सरक्षण पाते है, जिनका अध्ययन एव अनुशीलन अध्येता के अन्दर विचारो को उत्तेजित करता है और परिणामत. चिन्तन का क्षेत्र उर्वर बनता है।"[1]

सस्कृति और धर्म—

सस्कृति का धर्म से भी बडा गहरा सम्बन्ध है। यद्यपि यह अपनी अभिव्यक्ति कला एव साहित्य के माध्यम से पाती है, लेकिन इसका प्रतिबिम्ब धर्म और उपासना में

ही झलकता है। धर्म बहुत व्यापक शब्द है। मोटेरूप मे कहना चाहे तो कह सकते हैं कि किसी वस्तु का वस्तुत्व ही उसका धर्म है। जैसे मनुष्यता ही मनुष्य का प्रकृत धर्म है। यशदेव शल्य के शब्दो मे— "धर्म मानवीय अर्थ अथवा अन्वेषण के उस रूप को कह सकते है जो जीवन का लक्ष्य लोकोत्तर और परमचैतन्य की स्थिति की प्राप्ति को, अथवा परमचैतन्य के बोध की योग्यता की प्राप्ति को स्वीकार करता है। इस प्रकार से धर्म एक मूल्यबोध है, क्योंकि 'उत्कर्ष' इसके लिए मूल प्रत्यय है और उसका अन्वेषण या उपलब्धि इसकी मूल प्रेरणा।"[2]

धर्म और संस्कृति का आपस मे कोई विरोध नही है। दोनो मे अन्तर केवल इतना ही है कि धर्म मे जहाँ श्रुतियो, स्मृतियो और पुराणग्रथो का आधार रहता है, वहाँ संस्कृति मे परम्परा का। धर्म देशनिरपेक्ष है किन्तु संस्कृति का सम्बन्ध देश से अधिक है। संस्कृति को धर्म से अलग करके न देखना ठीक नही है। डा० त्रिभुवनसिंह के शब्दो मे—"प्राय. लोग संस्कृति को धर्म से अलग करके नही देख पाते और इस प्रकार वे संस्कृति के परिवेश को अत्यन्त सीमित कर देते है। जिस प्रकार कलाओ का उदय मानवजीवन को सुखमय बनाने के लिए समय-समय पर होता रहता है, उसी प्रकार समय-समय पर धर्म की रूपरेखा भी निश्चित होती रहती है। धर्म मानवनिर्मित है, धर्म मानव का निर्माता नही। कभी-कभी तो धर्म का अन्धानुकरण समाज के विकास मे घातक सिद्ध होता है। इसीलिए कार्ल मार्क्स ने धर्म को अफीम की संज्ञा दी है जो लोगो को सही दिशा सोचने ही नही देता।"[3]

संस्कृति और दर्शन—

संस्कृति का दर्शन से भी बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध है। "संस्कृति की समग्रता की खोज करने के लिए उसके विचारसाहित्य का अनुशीलन आवश्यक होता है। दर्शन ही इस विचारसाहित्य के आगार है। संस्कृति की गहनता, गम्भीरता, विशालता, स्थिरता और प्राचीनता आदि विभिन्न पहलुओ का सम्यक् विश्लेषण दर्शनसाहित्य मे ही निहित होता है।"[4]

संस्कृति और कला—

संस्कृति का धर्म और दर्शन की तरह कला से भी गहरा सम्बन्ध है। कला वह है जो मनुष्य को मनुष्य बनाती है, उसे पशु के सामान्य धरातल से ऊपर उठाती है। इससे हमे सुख मिलता है तथा हमारे ज्ञान की वृद्धि होती है। इसके साथ ही कला से हमारी सौन्दर्यभावना मे निखार भी आता है। स्थूलजीवन मे संस्कृति की अभिव्यक्ति कला को जन्म देती है। इसका सम्बन्ध जीवन के मूर्तरूप से है। यदि संस्कृति, मन और प्राण है तो कला उसका शरीर। मानवजीवन मे दोनो की उपयोगिता है। संस्कृति इसलिए



गुजरात के देलमल स्थल मे लिम्बोजी माता मन्दिर मे से प्राप्त हरिहर-हिरण्यगर्भ मूर्ति ।

तीन मुख एवम् अष्टभुजा वाली यह प्रतिमा कमलपुष्प, त्रिशूल, सर्प एवम् कलश से युक्त योगासन मे विद्यमान है ।



हरिहर-हिरण्यगर्भ प्रतिमा—त्रिमुखी एव अष्टभुजी यह देवप्रतिमा योगासनमुद्रा मे कमलासन पर आसीन है।



खजुराहो के प्रतापेश्वर मन्दिर की जगती मे जुडी हरिहर-हिरण्यगर्भ प्रतिमा ।

आवश्यक है कि भविष्य मे विचारो की दासता से मानव की रक्षा हो और कला इसलिए आवश्यक है कि यान्त्रिक दासता से मनुष्य अपने को बचा सके।

संस्कृति और लोकवार्ता :

लोकवार्त्ता के माध्यम से संस्कृति का स्वरूप सुरक्षित रहता है। लोकवार्त्ता का जन्म जनता के मानस मे होता है। यदि इनका संग्रह किया जाए तो उस आधार पर स्थान या देश-विदेश के निवासियों की अतीत से लेकर अब तक की बौद्धिक, नैतिक, धार्मिक एव सामाजिक अवस्था का एक सम्पूर्ण चित्र हमारे सामने उपस्थित हो जाएगा।

इन लोकवार्त्ताओ में लोकजीवन की भौतिक एव धार्मिक चेतना का मूलस्रोत निहित रहता है। अन्तत ये मानवसमुदायो के सास्कृतिक दृष्टिकोण एव जीवनमूल्यो को निर्धारित कर लोकजीवन को स्थिरता एव स्थायित्व प्रदान करती हैं। सस्कृति के एकीकरण मे इनका बहुत बडा हाथ होता है।

संस्कृति और संगीत :

संगीत के माध्यम से ही सस्कृति स्थायित्व प्राप्त करती है और साथ ही गति भी। लोकगीत, मानवहृदय के सच्चे उद्‌गार होते है। इनमे जीवन का निष्कपट अभिव्यजन होता है। लोकगीतो के प्रत्येक शब्द मे जीवन की यथार्थचेतना घुली-मिली रहती है। लोकगीत, समुदाय की भावनाओ के सच्चे प्रतीक होते है। ये जीवनमूल्यो पर प्रकाश डालते है। इनमे लोकजीवन के सुख-दुख, माधुर्य और करुणा तथा अश्रु और हास का भावपूर्ण चित्रण रहता है। केवल प्रेम और विरह ही नही, जीवन के अन्य पक्षो की भी मार्मिक अभिव्यक्ति करने की क्षमता इन गीतो मे होती है। इस तरह सगीत, सस्कृति के स्वरूप को सुरक्षित रखता है तथा इसे गति भी प्रदान करता है।

सस्कृति का प्रसार मात्र धर्म, दर्शन और कला तक ही सीमित नही है, वरन् इसका सम्बन्ध व्यक्ति, कुल, समाज, जाति तथा राष्ट्र से भी है। यह (सस्कृति) व्यक्ति, कुल, समाज, जाति तथा विश्वभर के समक्ष आदर्शों की प्रतिष्ठा करती है। ये आदर्श परम्परा मे परिचालित तथा पोषित होकर अनेक पीढियो तक चलते रहते है और आगे आने वाली सतति को प्रेरणा भी देते रहते है।

सस्कृति और व्यक्ति :

यद्यपि सस्कृति के निर्माण मे व्यक्ति का हाथ रहता है, लेकिन वह व्यक्तिगत अथवा थोडे से ही व्यक्तियो की वस्तु नही होती और न ही इसे व्यक्तिविशेष के प्रयत्न का परिणाम ही कहा जा सकता है। सच पूछा जाए तो सस्कृति, समाज के अनगिनत व्यक्तियो के

सामूहिक प्रयत्न का परिणाम होती हैं और यह प्रयत्न भी ऐसा जिसे एक के बाद एक आने वाली मनुष्यो की विविध सततियाँ निरन्तर करती रहती है।

सस्कृति और परिवार :

व्यक्ति से ऊपर उठकर सस्कृति, परिवार के स्तर पर आती है। परिवार को ही मानवसस्कृति की आरम्भिक पाठशाला कहा जाता है। परिवार मे हम जिस सयम, त्याग और सेवा आदि की भावना का अभ्यास करते हैं, उसके प्रयोग की समाज मे पग-पग पर जरूरत होती है।

संस्कृति और समाज :

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, अत उसकी सस्कृति का विकास भी सामाजिक व सामूहिक रूप मे होता है। सस्कृति ही समाज के विकास के प्रवाह का दिशानिर्धारण करती, है। जब किसी समाज के अधिकांश व्यक्ति अच्छे चरित्र और स्वभाव वाले, स्वावलम्बी परिश्रमी और एक-दूसरे के प्रति सद्‌भावना और सहानुभूति रखने वाले हो तो वह समाज निरन्तर उन्नति करता रहता है। इतना ही नहीं उसका नैतिकस्तर भी ऊँचा होता है। वह समाज सुसस्कृत समाज कहलाता है। उसकी सस्कृति ऊँचे दर्जे की सस्कृति मानी जाती है।

संस्कृति और जाति :

जातिगत आधारो पर भी सस्कृति का वर्गीकरण होता है, जैसे—भारतीय सस्कृति, मुस्लिम सस्कृति आदि। अलग-अलग प्रदेश के निवासियो मे भौगोलिकस्थिति, वातावरण तथा जलवायु आदि की भिन्नता के कारण कुछ असमानताएँ हो जाना स्वाभाविक है। यही कारण है कि विविध भूखण्डो के निवासियो मे विकास की प्रवृत्ति और दिशाओ मे समानता होते हुए भी कुछ भेद हो जाता है। वे अपने सामाजिक सगठन, रीति-व्यवहार, जीवन के उद्देश्य या ध्येय आदि के सम्बन्ध मे अलग-अलग विचारो और धारणाओ या विश्वासों वाले हो जाते हैं। अत एक प्रदेश के निवासियो की बहुत-सी परम्पराएँ दूसरे प्रदेश के निवासियो से अलग ढग की हो जाती है। मेरी समझ मे सस्कृति का इस तरह जातिगत विभाजन उचित नही है। मनुष्यजाति एक है, अत. उसकी सस्कृति भी एक ही है।

संस्कृति और राष्ट्र :

सस्कृति के विकास की अगली मंजिल राष्ट्र है। विचार और कर्म के क्षेत्र मे राष्ट्र का जो सृजन है वही उसकी सस्कृति है। सस्कृति के अभ्युदय और विकास के द्वारा ही

राष्ट्र का अभ्युदय और विकास सम्भव है। यदि राष्ट्र को संस्कृति से अलग कर दिया जाए तो वह कबन्धमात्र रह जाएगा। संस्कृति के आलोक में ही राष्ट्र पुष्पित-पल्लवित होता है।

संस्कृति और विश्व :

संस्कृति का स्वरूप किसी जाति या राष्ट्रविशेष तक ही सीमित नही रहता अपितु वह विश्वजनीन होता है। संस्कृति ही ऐसी है जो विश्व-बन्धुत्व की भावना का विकास करती है और मानवमात्र के कल्याण का मार्ग प्रशस्त करती है। काम, क्रोध, लोभ, अहकार, द्वेष, घृणा, स्वार्थ, घमड, क्रूरता इत्यादि हिंसात्मक भावो को समाप्त कर इनकी जगह प्रेम, सद्भाव, सहानुभूति, सहयोग, सेवा, त्याग तथा उपकार आदि की भावना का विकास करना ही संस्कृति का उद्देश्य है।

इस तरह संस्कृति की पैठ हमारे जीवन मे बहुत गहराई तक है। यह हमारे सम्पूर्ण जीवन को आच्छादित किए हुए है, जीवन का कोई अग इससे अछूता नही है। राजनीति, अर्थशास्त्र, धर्मशास्त्र, समाजशास्त्र, विज्ञानादि सभी को आत्मसात करते हुए संस्कृति एक ऐसा व्यापक एव विस्तृत परिवेश प्रस्तुत करती है जिसमे रहकर हम अपने जीवन का सर्वांगीण विकास कर सकते है।

सन्दर्भ :—

१ — वैदिक संस्कृति और सभ्यता – डा० मुंशीराम शर्मा, पृ० १७।
२—संस्कृति मानव कर्त्तृत्व की व्याख्या—यशदेव शल्य, पृ० ११७।
३—'शांतिनिकेतन से शिवालिक तक—सम्पा० डा० शिवप्रसाद सिंह' से उद्धृत।
४—भारतीय संस्कृति और कला—वाचस्पति गैरोला।

प्राचीन भारतीय युद्धनियम

डा० रामसिंह
प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग,
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

जगत के प्रारम्भिक विकास के साथ ही युद्ध की भावना मानवता के साथ जुड़ी हुई है। विकास का ऐसा कोई भी युग दृष्टिगत नहीं होता, जहाँ चेतनप्राणियो के बीच युद्ध न हुआ हो। फीचर्ड के अनुसार "युद्ध, आँधी, भूकम्प, ज्वालामुखी तथा प्रवाहित तरंग की तरह प्राकृतिक दृश्य है। अतीत, वर्तमान तथा भविष्य सभी कालो मे यह तरंग लहराती दिखायी देती है।" युद्ध बर्बरता का ही चिह्न न बन जाय, इसे रोकने के लिए प्राचीनकाल से ही प्रयास होते रहे है। एक पक्ष जब दूसरे पक्ष से युद्धरत हो उस समय युद्धसम्बन्धी कुछ नियमो का पालन आवश्यक हो जाता है। प्राचीन काल मे जब कभी दो दल किसी सन्धिस्थल पर एकत्रित होते थे और नियम बनाते थे तब वे ही नियम उनके लिखित युद्धनियम हो जाते थे, किन्तु उन नियमो मे लोक-कल्याण का ध्यान रखा जाता था।

प्राचीनग्रन्थो का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि महाकाव्यकाल से पूर्व युद्धविषयक नियमो का विधिबद्ध उल्लेख नही हुआ था। भीष्मपर्व मे वर्णन है कि जिस समय कुरुक्षेत्र मे सोमको सहित पाण्डवो तथा कौरवो की सेना युद्धभूमि मे आई, उस समय उन लोगो ने आपसी समझौते के अनुसार युद्ध के सम्बन्ध मे कुछ नियमो का निर्धारण किया और युद्धधर्म की प्रतिष्ठा स्थापित की[1]। युद्ध के उन नियमो का उल्लेख परवर्ती ग्रन्थो मे भी मिलता है किन्तु समयानुसार उनमे परिवर्तन एव परिवर्धन भी होता गया।

प्राचीनतम साहित्यिक ग्रन्थो मे नीति के लिए 'नय' शब्द उल्लिखित हुआ है, जो सख्या मे चार है—साम अर्थात् सन्धि की नीति, दान अर्थात् कुछ धन आदि देकर किसी राज्य को प्रसन्न करने की नीति, भेद अर्थात् फूट उत्पन्न करने की नीति तथा दण्ड अर्थात् युद्ध की नीति। इन नीतियो मे से किसी राजा के साथ किस प्रकार की नीति का प्रयोग किया जाना चाहिए, ग्रन्थो मे इसका विस्तृत उल्लेख है। महाभारत[2] के अनुसार अपने समान पराक्रम वाले राजा के साथ साम और भेद की नीति, अपने से सशक्त के साथ दान की नीति, अपने से कमजोर के साथ दण्ड की नीति का, आचार्य

कौटिल्य[3] के अनुसार दुर्बल राजा को अधीन करने के लिए साम और दण्ड की तथा प्रबल राजा के साथ भेद की नीति का, शुक्राचार्य[4] के अनुसार अशक्त शत्रु राजा द्वारा त्रस्त राजा के साथ साम और दान की, अपने से सबल राजा के साथ साम एवं भेद की, तथा समबल वाले राजा के साथ दण्ड की नीति का प्रयोग करना चाहिए।

युद्ध प्रारम्भ होने के पूर्व सर्वप्रथम सामनीति ही प्रयुक्त होती थी। भीष्म के अनुसार चतुरंगिणी सेना एकत्र करने के बाद भी सर्वप्रथम सामनीति द्वारा ही शत्रु से संधि करने का प्रयास करना चाहिए। इस कार्य मे असफलता मिलने पर ही युद्ध करना न्यायसंगत है[5]। मनुस्मृति[6] मे भी सामनीति से शत्रु पर विजय करने का उल्लेख है। इस ग्रन्थ मे यह स्पष्ट निर्देश दिया गया है कि पहले युद्ध द्वारा विजय प्राप्त करने की चेष्टा कदापि नही करनी चाहिए, क्योकि युद्ध मे दोनो पक्षो मे से किसी पक्ष की विजय तथा पराजय सुनिश्चित रहती है, इसलिए युद्ध सर्वथा त्याज्य है। इसी प्रकार का वर्णन याज्ञवल्क्यस्मृति[7], कामन्दकनीतिसार[8] तथा शुक्रनीति[9] मे भी मिलता है।

उपर्युक्त ग्रन्थो के इन उल्लेखो से यह स्पष्ट होता है कि प्राचीन भारतीय विचारको ने साधारणतया शस्त्रबल की अपेक्षा बुद्धिबल के प्रयोग को उचित माना है। क्योकि युद्ध प्रारम्भ होने के पहले सामनीति का ही सर्वप्रथम उपयोग बतलाया गया है। दण्ड का प्रयोग उस स्थिति मे किया जाता था, जब उपर्युक्त तीन नीतियो से विजय असम्भव प्रतीत होती थी।

यदि कोई राजा किसी अन्य राजा को अपने अधीन करना चाहता था तो उसको युद्ध करने के पहले दूत भेजकर सूचित करना पड़ता था कि या तो मेरी अधीनता या शर्त स्वीकार करो या युद्ध करने के लिए तैयार रहो। रामायण तथा महाभारत मे अंगद तथा श्रीकृष्ण का दूत बनकर जाना इस बात का प्रमाण है। यह परम्परा परवर्ती-काल मे भी विद्यमान रही। अजातशत्रु ने वैशाली के राजा चेटक के पास सर्वप्रथम इस संदेश के साथ दूत भेजा था कि वह राजकुमारो को मुक्त कर दे, यदि ऐसा नही करता तो युद्ध के लिए तैयार रहे। बुद्धचरित[10] के अनुसार भगवान बुद्ध के अस्थि-अवशेष को प्राप्त करने के लिए मल्लो के पड़ोसी अन्य सात राजाओ ने सर्वप्रथम अपना-अपना दूत भेजा था। इस कार्य मे सफलता न मिलने पर ही मल्लो के विरुद्ध सैन्यअभियान प्रारम्भ किया। इसी प्रकार ब्रह्मदत्त के पुत्र बोधिसत्व ने कौशलनरेश के पास सन्देशवाहक द्वारा यह सूचना दे दी थी कि या तो राज्य दे दो अन्यथा युद्ध के लिए तैयार रहो। कौसल के राजा ने काशी के राजा के नगर के बाहरी द्वार पर पहुँचकर सूचित कर दिया था कि या तो राज्य दे दो या युद्ध करो।[11] विदेशी आक्रमणकारियो ने भी इस नीति का पालन किया। यूनानी आक्रमणकारी सिकन्दर ने भारतीय नरेश पोरस के पास अपने राजदूत के माध्यम से यह संदेश भेजा था कि वह उपहार भेटकर अधीनता स्वीकार करे या अपनी सीमा मे मेसीडोनी सेना की प्रतीक्षा

करे। पोरस ने दूसरी शर्त ही स्वीकार की जिसके फलस्वरूप दोनों मे युद्ध हुआ[12]। इसी प्रकार कुषाणवंशी सम्राट कनिष्क ने चीनी शासक के सम्मुख प्रारम मे राजदूत के माध्यम से सफलता प्राप्त करनी चाही थी किन्तु इस कार्य मे असफल होने पर ही उसे युद्ध करना पड़ा[13]।

प्राचीन ग्रन्थो मे ऐसे लोगो की सूची दी गयी है जिनका वध युद्धकाल मे वर्जित था। उदाहरणार्थ महाभारत[14] के अनुसार कलाकार, घायलो की देख-भाल करने वाले, अस्वस्थ, कृषक, आदि युद्ध के प्रकोप से बचे रहते थे। भीष्म का विचार था कि जिसने अपना शस्त्र नीचे डाल दिया हो, जो भयभीत होकर भाग गया हो, जो निहत्था हो, जो वाहनविहीन हो, जो विपत्ति मे पड गया हो, जो गिर पडा हो, जो कवच-रहित हो, जो 'मैं तुम्हारा हूँ' ऐसा कह रहा हो, ऐसे सैनिको के साथ युद्ध करना न्यायोचित नही। धर्मसूत्रो [15] के अनुसार जो अश्व, सारथी, आयुध आदि विहीन हो, जो पीठ दिखा रहा हो, जो दूत हो, जो ब्राह्मण हो, जो हाथ जोड रहा हो, जिसके बाल बिखर गये हो, ऐसे व्यक्तियो पर प्रहार नही करना चाहिए। इसी प्रकार के अप्रहार्य लोगो की लम्बी सूची अर्थश स्त्र, मनुस्मृति, याज्ञवल्क्यस्मृति, आदि ग्रन्थो मे दी गयी है।[16] दक्षिण भारतीय ग्रन्थो मे भी युद्ध मे अप्रहार्य लोगो के सम्बन्ध मे इसी प्रकार का मिलता-जुलता रूप प्रस्तुत किया है, यथा –जो अपने बालो को सन्यासियो की तरह बाधे हुए हो, लाल तथा केसरिया वस्त्र पहने हो, जिसने अपना वस्त्र उतार दिया हो, जो सगीतज्ञ एव नर्तक हो, आदि।

उपर्युक्त नियमो के अतिरिक्त प्राचीन मनीषियो ने युद्ध, समबल मे ही होने का विधान किया था। महाभारत [18] मे स्पष्ट रूप से कहा गया है कि अश्वारोही सैनिको को अश्वारोही से, गजारोही को गजारोही से, रथारोही को रथारोही से एव पदाति को पदाति सैनिको से युद्ध करना चाहिए। महाभाष्य [19] मे उल्लेख है कि प्रत्येक योद्धा अपने ही श्रेणी के सैनिको से युद्ध करते थे। महाकवि कालिदास [20] एव आचार्य शुक्र [21] ने भी अपने ग्रन्थो मे इन नियमो का उल्लेख किया है। तत्कालीन शिल्पकला से भी समबल मे युद्ध करने के नियम की पुष्टि हो जाती है। अमरावती स्तूप के शिल्पकला के अकन मे प्रत्येक सैनिक को अपने ही समान सैनिको से युद्ध करते हुए अकित किया गया है।

इसी प्रकार युद्धक्षेत्र मे मूर्च्छित सैनिको पर प्रहार करना वर्जित था। राम द्वारा मूर्च्छित रावण पर तब तक प्रहार नही किया गया जब तक कि वह स्वस्थ होकर नए धनुष एव अन्य शस्त्रास्त्रो के साथ पुन युद्धक्षेत्र मे नही आ गया।[23] महाकाव्यकालीन इस परम्परा का निर्वाह गुप्तकाल तक होता रहा, क्योकि कालिदास ने ऐसे अनेक उदाहरण प्रस्तुत किए है। उदाहरणार्थ एक घुडसवार सैनिक ने जबाबी हमला करने मे असमर्थ मूर्च्छित दूसरे घुडसवार सैनिक पर कोई प्रहार नही किया बल्कि उसके होश मे आने की प्रतीक्षा करने लगा।[24] इसके अतिरिक्त युद्धभूमि मे काटेदार तथा

विष बुझे बाणो एव कूट आयुधो का प्रयोग निषिद्ध था।[25] युद्ध के समय अपने-अपने सैनिकों को यह आदेश दिया जाता था कि वे कृषको एव ग्रामीणो को किसी भी प्रकार का कष्ट न दे। मेगस्थनीज ने लिखा है कि कृषकगण निश्चिन्त एव निर्भय होकर अपना कृषिकर्म करते थे और पास-पडोस मे भयकर युद्ध चला करते थे। लेकिन युद्धरत सैनिक उन्हे किसी भी प्रकार का कष्ट नही पहुँचाते थे।[26]

उपर्युक्त विवरणो से स्पष्ट होता है कि प्राचीन भारतीय विद्वानो ने युद्धविषयक नियमो का निर्धारण कर एक आदर्श युद्धव्यवस्था का विधान किया था, किन्तु विचारणीय प्रश्न यह है कि इन आदर्शों का युद्धकाल मे कहाँ तक निर्वाह होता था। यदि हम उन्ही ग्रन्थो का अध्ययन करे तो ऐसे भी उदाहरण मिलते है जो नितान्त व्यवहारपरक है एव कूटनीति तथा अधर्मयुक्त है। इसके कुछ उदाहरण द्रष्टव्य है। महाभारत[27] के अनुसार यदि कोई शत्रु अपने घर मे आसन पर बैठा हो (युद्ध न करना चाहता हो) तो भी उसे नष्ट करने मे नही चूकना चाहिए। इस ग्रन्थ मे अभिमन्यु-वध की घटना उल्लेखनीय है, जिसमे छ महारथी एक रथहीन बालक पर बाणो की वर्षा कर रहे थे। इसी प्रकार जयद्रथ-वध, द्रोणाचार्य एव कर्ण आदि के वध इसके अनुपम उदाहरण है। अधर्मयुद्ध का प्रचलन परवर्ती काल मे विशदरूप ग्रहण करता चला गया। चतुर्थ शताब्दी मे सिकन्दर ने अश्वको द्वारा आत्मसमर्पण के समय जो सन्धि की थी, उसके अनुसार अश्वको की ओर से लडने वाले सैनिको को किले से बाहर चले जाने की शर्त थी किन्तु सिकन्दर ने अपने वचन का उल्लघन कर सैनिको के दुर्ग से निकलने से पूर्व ही उन पर आक्रमण कर दिया और अधिकाँश सैनिको की हत्या कर डाली। इसी प्रकार सिकन्दर ने क्षुद्रको के साथ हुए युद्ध मे उनकी स्त्रियो एव बच्चो की भी निर्मम हत्या कर डाली जो यूनानियो द्वारा युद्धनियमो की अवहेलना का प्रतीक है। मुद्राराक्षस[28] के अनुसार राक्षस ने बीभत्सक को सुसुप्तावस्था मे चन्द्रगुप्त के शरीर पर प्रहार करने का निर्देश दिया था जो अपने कार्य मे सफल रहा और मारा गया। देवी चन्द्रगुप्तम् नाटक मे दिए हुए विवरण के अनुसार चन्द्रगुप्त द्वितीय ने अपने बडे भाई रामगुप्त की स्त्री का वेशधारण कर राजा के पास जाकर उसका वध कर डाला था। इस प्रकार के अनेक उदाहरण इतिहास के पृष्ठो मे भरे पडे है। आचार्य कौटिल्य[29] ने तो यहाँ तक कहा है कि मार्ग मे जल न पाने वाली, धान-भूसा, ईधन आदि से रहित, कठिन यात्रा मे चलने वाली, भूख-प्यास आदि से त्रस्त, नीद लेती हुई, दुर्भिक्ष आदि से पीडित, सैनिक आपत्तियो से ग्रस्त शत्रु की सेना को नष्ट करने मे सकोच नही करना चाहिए। इसी प्रकार मनुस्मृति, कामन्दकनीतिसार एव शुक्रनीति आदि ग्रन्थो मे कूटनीति एव अधर्म युद्ध के विषय मे विस्तृतरूप से उल्लेख मिलता है, यथा - शत्रु की सेना मे फूट पैदा करके आक्रमण कर देना, युद्ध मे श्रम से थके हुए एव रात्रि मे सो रहे सैनिको पर, भूख-प्यास से व्याकुल, भोजन मे लगी हुई, दुर्भिक्ष तथा महामारी आदि से पीडित शत्रुओ की सेना पर धावा बोलकर मार देना चाहिए।[30]

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि शास्त्रकारो द्वारा युद्ध के जो नियम बनाए गए थे वे

अत्यन्त उत्तमकोटि के थे, किन्तु ये आदर्शवादी नियम सिद्धान्तपरक अधिक थे, व्यवहारपरक कम। क्योंकि जिन ग्रन्थो में एक तरफ आदर्शयुक्त नियमों का वर्णन है, वही दूसरी तरफ कूटनीति या अधर्मयुद्ध का अपेक्षाकृत अधिक उल्लेख है। इससे यह प्रतीत होता है कि युद्ध मे शत्रुओ को पराजित करना ही युद्धमान सैनिको का मुख्य उद्देश्य होता था। इस कार्य के लिए चाहे गर्हित कार्यों का ही आश्रम क्यो न लेना पडे।

सन्दर्भ ग्रन्थ

१ भीष्म पर्व १/२६–२६ ।

२ आदि पर्व १४०/२३–२४ ।

३ अर्थशास्त्र ७/१२१/१६ ।

४ शुक्रनीति ४/१/३८ ।

५ शान्ति पर्व १०२/१६ ।

६ मनुस्मृति ७/१९८–२०० ।

७ याज्ञवल्क्यस्मृति १/३४६ ।

८ कामन्दकनीतिसार १८/१ ।

९ बुद्धचरित १८/१ ।

१० शुक्रनीति ४/१/३७ ।

११ अमातरूपजातक, १/१०/१०० महाशिलवजातक, १/६/५१ ।

१२ सरकार, जदुनाथ, मिलिटरी हिस्ट्री आफ इण्डिया, पृ० १५ ।

१३ चट्टोपाध्याय, बी०, कुषाण स्टेट एण्ड इण्डियन सोसाइटी, पृ० १३६ ।

१४ भीष्म पर्व १०७/७७–७८, शान्ति पर्व ९६/१५, विराट पर्व ६७/५ ।

१५ गौतम धर्मसूत्र १०/१७–१८, आपस्तम्ब २/६/१२,
बौधायन धर्मसूत्र १/१०/८–२२ ।

१६ अर्थशास्त्र १३/१७४–१७५/४, मनुस्मृति ७/९१–९३, याज्ञवल्क्यस्मृति १/३२६ ।

१७ पुरनानुरू ९, मिलप्पादिकारम् २६/२२५–३०, सिरुपचमूलम् ४६,
पुरनानुरू ३८६ ।

१८ भीष्म पर्व ४५/८३ ।

१९ महाभाष्य ६/१/४८ ।

२० रघुवंश ७/३७ ।

२१ शुक्रनीति ४/७/३५७–५८ ।

२२ शिवराममूर्ति, सी०, अमरावती, स्कल्पचर्स इन दि गवर्नमेन्ट म्यूजियम, मद्रास,
फलक ५६, चित्र १,२, पृष्ठ २४६ ।

२३ युद्धकाण्ड ५१/१४३ ।

२४ रघुवंश ७/४७, कुमारसम्भव १६/३७ ।

२५ मनुस्मृति ७/६०, शान्ति पर्व ६५/१०–१४ ।
२६ मजूमदार, आर० सी०, क्लासिकल एकाउन्ट्स आफ इण्डिया, पृष्ठ २३३, २६४।
२७ द्रोणपर्व ४८/३१–३३ ।
२८ मुद्राराक्षस २/१३ ।
२६. अर्थशास्त्र १०/१४८–१४६/२ ।
३० मनुस्मृति ७/१६७, कामन्दकनीतिसार १८/६४, ६६, ६६,
शुक्रनीति ४/७/३४७–३५० ।

ानक अलक सूरि

डा० निगम शर्मा
विभाग, गु० कां० वि० हरिद्वार

ब्रह्म मे सुखोपविष्ट होने से तथा विषयान्तर से विक्षेप-रहित होने से टीकाकार मे सराहना की वृद्धि प्रमुदित और उदित होती है। टीका हमारी विचार-पद्धति मे नवीनता और प्रखरता लाती है तथा चिन्तन के लिए उत्तेजित करती है। निर्णायक विवेक-चेतना जागृत करती है। जीवन की अँधेरी समस्याओ मे टीका एक प्रेरित-ज्योति है। टीकाकार में प्रभावशाली व्यक्तित्व की कल्पना की जाती है। विवेचना-शक्ति, अर्थ-सङ्गति लगाने की ऊहा, सामाजिक एव सामयिक-ज्ञान के लिए विशेष-बुद्धि टीकाकार की विशेषता है। कवि का अर्थगाम्भीर्य अण्डे मे से प्रथम मुकुलित-शिशु-सा, सीप से झाँकते मोती-सा, सुमनायित नाभि से कस्तूरी-सा गन्धाकुल रहता है।

भाषा को वाग्देवी कहा गया है। वाग्देवी की स्तुति मे ऋचाओ से लेकर अब तक के ऋषियो ने मनन-सामग्री प्रस्तुत की है। समर्थ-समर्थको ने बताया कि प्राणशक्ति सरस्वती मे अनुरणन करती है और सरस्वती प्राण मे प्रलीन रहती है। यह वाक् परारूप मे सदा देवताओ के साथ रहती है। मानव ने चिन्तन करते-करते ऋषित्व को प्राप्त कर लिया पर इस अनादिनिधना वाक् को पूर्णरूपेण न जान सका। वृत्ति की व्यापकता हमे वाग्-ब्रह्म तक ले गयी पर 'यन्मनसा न मनुते' कह कर उपनिषद्-ऋषि ने वाग्-ब्रह्म तक पहुँच सकने मे मानवीय-शक्ति को अपूर्ण कहा। पूर्णपुरुष को वाणी के ही माध्यम से जाना जा सकता है पर वह पूर्णपुरुष वाणी से उदित नही होता क्योकि वाणी स्वय उसी से उदित होती है। वाक् ही मनु है और वाक् ही सोम-तत्त्व को धारण करती है।

धन्य है वे मनीषी जिनके रहस्यमय वाङ्मय को समझने तथा अन्य तक पहुँचाने के लिए गुण-रसिक पारखी मिलते है। विवेचक के कञ्चन-मण्डित मुकुर मे मूलकवि अपनी विशदता और विशालता का अवलोकन करता है। रसभरे नयन दर्पण मे अधिक दमकते है। मानो ऐसे विदग्ध विवेचको के हृदय को बना लेने के अनन्तर ही अवशिष्ट परमाणुओ से विधाता ने सिन्धु की अगाधता, पर्वतो की दृढता तथा आकाश की विस्तीर्णता का सृजन किया।

टीकाकार का यह परम कर्त्तव्य है कि मूल रचयिता के शब्द को भली प्रक कर बोले। उसके प्रति किसी प्रकार का अगौरव न उठने दे। कही ऐसा भी न. शब्द कथन-मात्र बनकर उसकी टीका केवल एक पुनरुक्तिमात्र बन जाए। अत क्रान्त कवि के शब्द की विशेषता को परखे और व्युत्पत्ति के द्वारा उस दिव्य-दर्शन का स्पर्श क जिसे कि मूल कवि ने अपने शब्द-दर्पण मे देखा है। पूर्ण गवेषणा करके अपने से पूर्ववत तद्विषयक या अन्य विषयक अर्थद्रष्टा समीक्षको की गूढदृष्टि का समाधि द्वारा अनुशीलन करे और पुन यदि पिछले किसी आलोचक द्वारा दोष उद्‌भावित हों तो उनकी सारग्राही समीक्षा करे जैसा कि पतञ्जलि, शबर स्वामी, आचार्य शकर, अभिनव गुप्त आदि लोक-रजक आचार्यों ने किया है। ये आचार्य वाणी के चित्त को अकुरित करने वाले चिन्तामणि है जिनके परिरमणीय आलोक मे मूल ऋषि जगमगा रहे है। वास्तव मे यदि ऐसे समीक्षक ऋषि न मिले होते तो इन अद्‌भुत प्रतिभाशाली ऋषियो को समझ पाना न केवल दुरूह हो जाता अपितु भारती रग-मच से बहुत-से स्वर्णिम पत्र तथा पात्र अदृश्य हो जाते। काव्यगत न्याय-बीज का निबन्धन टीकाकार की चातुरी है। कवि कभी-कभी प्रमादवश बहक जाता है पर टीकाकार को तत्काल उसको प्रवृत्ति आँक लेनी चाहिए। 'न चेदानीमाचार्या सूत्राणि कृत्वा निवर्तयन्ति' कह कर आप उसे क्षमा भले ही कर दें पर आपकी दृष्टि से वह दोष ओझल नही रहना चाहिए क्योकि कही-कही ऋषि के प्रमाद मे भी भारती की भव्यता शकुन्तला के रूप मे अन्तर्निहित ही रहती है। अतएव शङ्कित, सम्भावित एव समारोपित प्रश्नो का समाधान भी प्रतिभोन्मेष के साथ आवश्यक है जिससे कि मूल कवि के प्रति अगौरव का परिहार हो तथा गौरव-प्रतिपादन की विशिष्टता कमनीयता के साथ झलके।

सूर्य एव चन्द्र की प्रभा से भास्वर रत्न-दीपिका के समान, मणिमय-टीका के समान उच्च कवि की टीका अन्तराल के निगूढार्थ को प्रकाशित करती हुई काव्य-मन्दिर को आनन्दित करती है। भगीरथ-प्रयत्न से साध्य सच्ची टीका गङ्गा के समान ही जाड्य-मल का प्रक्षालन करती है। अतएव स्पष्ट-स्थलो पर कोश-व्युत्पत्ति आदि का बल-प्रदर्शन टीकाकार को नही करना चाहिए। गम्भीर-स्थलो पर अर्थाविष्कार की ओर पूर्ण प्रयास करके मार्मिक-दृष्टि की उद्‌भावना करनी चाहिए। यदि कही कूट-स्थल हो तो वहाँ पर अपने प्रतिभान का लम्बोदर-कौशल दिखाना चाहिए पर ऐसी उद्‌भावना नही करनी चाहिए जो कि मूल कवि को इष्ट न हो।

टीका गहन-विषय को स्पष्ट करने के लिए लिखी जाती है अत. उसे सरल, सुपाठ्य एव सुपाच्य बनाना चाहिए। उद्योतकर ने 'न्याय-वार्तिक' टीका लिखी। वाचस्पति मिश्र ने इसको स्पष्ट करने तथा विपक्षियो के समाधान के लिए 'न्याय-वार्तिक-तात्पर्य-टीका' लिखी। वह भी इतनी दुरूह हो गयी कि आचार्य उदयन ने इस पर 'परिशुद्धि' टीका लिखी।

आचार्य नीतिनेत्र का श्लोक है—

> यः स्याद् भुजगवद्भूपो वहिरीक्षित मोहितः ।
> तं खादन्ति न किं नाम लञ्जिका इव सेवकाः ॥

यहाँ पर 'लञ्जिका' शब्द विचारणीय है। 'लञ्जिशोभायाम्' परार्थमात्मानं शोभयन्ति या, ता वेश्या.। लञ्जिका वेश्या को कहते हैं जो अन्य पुरुषों के लिए अपने को सजाती है। जब लञ्जिका का अर्थ स्पष्ट हो गया तब भुजग का अर्थ भी खुल गया। अर्थात् वे मदिरापान करने वाले विलासी जो कि वेश्याओ के यहाँ सर्प की भाँति मद मे पडे रहते हैं। आचार्य नीतिनेत्र का कहना है कि यदि राजा विलास-प्रिय हो जाए और आलोक-मात्र मधुर रूप-रस के लिए मोहित होने लगे तो उसे सेवक लोग उसी प्रकार खा जाते हैं जिस प्रकार कि विलासी धनी पुरुषो को वेश्या।

राजानक अलक सूरि उद्‌भट विद्वान् थे। इन्होने अपने जन्म से कश्मीर की कुंकुम-भूमि को सुरभित किया था। इनका समय राजाधिराज पृथ्वीराज के जीवन का उत्तरवर्ती काल है जबकि भारत की सस्य-श्यामला मगलमयी भूमि को विदेशी घोडे रौंद रहे थे।

राजानक अलक सूरि के पिता का शुभ नाम राजानक जयानक सूरि था। श्री जयानक अपने समय के उच्चकोटि के कवि और कोमल-कल्पना के जागरूक द्रष्टा थे। इन्होने पृथ्वीराज विजय महाकाव्य के रूप मे सस्कृत-वाङ्मय को एक अनुपम श्रेय दिया है। महान् समीक्षक जोनराज ने इस महाकाव्य पर टीका लिख कर उसकी प्रभुता एव गौरव का उद्‌गान गाया है। काव्य और टीका की परम्परा मे यह दोनो उज्ज्वल कृतियाँ है।

श्री जयानक, सरस्वती की तुलना नदी से करते है—

> कवित्व पाण्डित्य तदद्वयेन सरस्वती सिन्धुरिव प्रवृत्ता ।
> एकत्र पीयूषमयो रसोऽयमन्यत्र मात्सतं विषात्मकोऽस्याः ॥
>
> (१-११)

महाकवि जयानक का कहना है कि सहस्र दृष्टि पाने पर भी इन्द्र जिस रहस्य को नही देख पाते, उसे क्रान्तदर्शी कवि ही देख सकता है।

> दृशां सहस्रेण न वीक्षते यद् वागीश शिष्टो विबुधाधिराज. ।
> तमद्वितीयेन कवे विवेक्तुं दृष्टि भंवत्यस्यधिकाधिकारा ॥
>
> (१-१३)

सज्जन कभी-कभी प्रमाद कर जाता है पर दुर्जन अपना स्वभाव नही छोडता—

साधुः प्रमादास्त्यजति स्वभावं खल स्तु नारोहति साधुभावम् ।
निर्गन्धतामेति हि चन्दनादि न सौरभं सघटते रसोने ॥

(१-२३)

इस पृथ्वीराज महाकाव्य के अवगाहन से पता चलता है कि कवि जयानक महाराज पृथ्वीराज की सभा के पण्डित थे और इन्द्रप्रस्थ मे बहुत दिनो तक निवास ही नही किया था अपितु श्री पृथ्वीराज के प्रिय मित्रो में भी उनकी गणना थी। इनका पूर्ण काव्य अतीव सरस, सूक्तिसुधा से सिक्त, नाना रसो एवम् अलङ्कारो से परिपुष्ट श्री भारवि एव माघ की परम्परा का अद्वितीय महाकाव्य है। यद्यपि यह महाकाव्य पूर्ण उपलब्ध नही होता पर जितना उपलब्ध है उसके अनुशीलन से पता चलता है कि इसका कवि अवश्य ही काश्मीर की कु कुम-कल्पना से एक नवीन कल्पवृक्ष उगा गया है।

तिलोत्तमा धरणी पर द्यु नदी (गगा) के समान अवतीर्ण हुई है। भला गगा बहुवाहिनी-पति (सेनाओ के पति पृथ्वीराज, नदियो के पति सागर) के अतिरिक्त कहाँ विश्राम पा सकती है ?

तदवश्यमसौ तिलोत्तमा द्यु नदीवावततार भूतलम् ।
अचिरादपि पर रेकतामुपयाता बहुवाहिनीपतेः ॥

(१२-३८)

राजा की आँखे, कान और हृदय (पाँचो) एक साथ ही विकसित हो गये। पचशर ने भी अपने को धन्य माना—

नयने श्रवणे मनश्चयस्समेव व्यकसम्महीपतेः ।
विपुलीकृत लक्ष्यपचक. सुकृती पचशरस्ततोऽभवत् ॥

(१३-३)

रसोज्ज्वल कवि एवम् अर्थद्रष्टा युग-पुरुष के रूप मे जयानक कवि जैसे पुण्यकाम पिता को पाकर राजानक अलक सूरि अवश्य ही पितृमान् कहे जायेंगे। भला जिस घर मे स्वय सरस्वती निवास एवं विलास करती हो, उस घर की शोभा और ज्ञान-समृद्धि के बारे मे क्या कहा जा सकता है ? जितना कहा जाय, उतना ही अल्प है। इससे अनुमान किया जा सकता है कि राजानक अलक सूरि का बचपन साक्षात् हितरमणीय पाणि-पल्लव की केसरछाया मे पल्लवित हुआ था।

वाग्देवतावतार मम्मट सम्भवत तब अपने जीवन के वृद्धत्वकाल मे पहुँच चुके

होंगे। उव्वट ने अपने वेद-भाष्य को पूरा कर लिया था। धनपाल की 'तिलक मंजरी' अपनी कीर्ति-सुरभि से लोगो को पुलकित कर रही थी। राजा भोज का सरस्वती कंठाभरण जगमगा रहा था। विल्हण का विक्रमाङ्कदेव चरित सहृदयो के लिए कविता-निकष बन चुका था। भट्ट कैयट अपने प्रदीप के द्वारा महाभाष्य के गहन-अन्तराल तक पहुँचने मे दत्तचित्त थे। रुय्यक ने अपने अलङ्कार सर्वस्व के द्वारा अपूर्व कीर्ति अर्जित कर ली थी। जयापीड राजा के सभा-पंडित भट्टोद्‌भट का नाम विस्तृत हो चुका था। महिम भट्ट का व्यक्ति-विवेक भी विद्वत्समाज मे नये ढग से चर्चा का विषय बन चुका था। भारत मे पहुँचे हुए यवन भविष्य मे चमकने वाले अमीर खुसरो के लिए मार्ग प्रशस्त कर रहे थे। गगा के पावन-वातावरण मे भीषण-उन्माद एव रक्तपात का ताण्डव बख्तियार खिलजी खेल रहा था। लाखो सरस्वती के उपासक इस तलवार-ताण्डव मे बलि चढ रहे थे।

इसी बेला मे सरस्वती का दुग्धमुख, मुग्धकवि, युग-प्राण भारत-पुत्रो को 'पृथ्वीराज विजय' महाकाव्य के माध्यम से उभय-तत्र का मत्र दे गया—

भाषादोषवशाद् गिरां बलरजः स्तोमं दिशामम्भसा—
भक्षणां भानुरुचां च दुष्कृतभरद्‌द्यावापृथिव्योरपि।
काठिन्यात्कुलिशस्य भारकफलासङ्गाद्विषूणां वधाद्—
धेनूनां च धरण्योरधि वशाधा तथ्याभिधं गौरिभिः।

(१०-४९)

ऐसी तलवारो की झन्झनाहट मे काश्मीर की घाटी नन्दन-वन के सुरम्य पुष्पो से प्रकृति को सजा रही थी। राजानक अलक सूरि अपने आदर्श पिता के पद-चिन्हो पर चलते हुए अपने चिन्तन-चिन्तामणि को स्यमन्तक स्पर्श देकर पुलकित-प्रसन्न कर रहे थे।

राजानक जयानक अपने माधित वेश मे बहुत ही भव्य लगते थे। प्रथम बार सधे हुए शिरोवेष्टन से अलङ्कृत, भावमयी, प्रभावमयी इस दिव्य प्रतिमा को देखते ही पृथ्वीराज का मन परिचय के लिए विकल हो उठा—

इदमन्यपरं जगौ कवितां कश्च पपाठ चात्र कः।
कतमश्च विपश्चिदेष यो निविडोष्णीषदुरीक्ष्यकुन्तल।

(१२-४९)

पृथ्वीभटमुक्तवन्तमित्यवदन्मानधरो महत्तम.।
मिहिरोऽन्यगुणप्रकाशने परदोषावरणे महत्तमः॥

(१२-६२)

विबुधः सुकविश्च शारदा मधवन्मगल मण्डलादयम् ।
निगमागमतीर्थतापसः प्रथमोऽद्यागतवाङ्जयानक ॥

(१२–६३)

राजानक अलक सूरि अपने पिता के समान शिर पर पगडी बाँधते थे या नही, यह तो नही कहा जा सकता पर इतना तो कहा ही जा सकता है कि यह राजानक-वश सरस्वती के कण्ठ का हार था जिसमे अनेक मोती और मणि के तुल्य रत्न थे ।

राजानक श्री रत्नाकर को भारती के उपासक भूले-से प्रतीत हो रहे है । इनके अत्यन्त उदात्त 'हर-विजय' महाकाव्य की प्रभास्वर–टीका लिख कर अलक सूरि ने अपने जिस विद्या-वैभव का परिचय दिया है, वह अद्भुत है। महाकवि रत्नाकर अपने 'हर विजय' महाकाव्य की प्रशसा करते हुए स्वय कहते है—

'अपि शिशुरकवि कविः प्रभावाद्—
भवति कविश्च महाकवि क्रमेण ।।

निश्चय ही जब अलक सूरि ने इस अवदात चन्दनवन मे रत्नाकर की सरस्वती को वीणा–विलास करते देखा होगा तो इस नन्दन–मनोहारी दृश्य ने उनके हृदय को रसना-सनाथ कर दिया होगा। रत्नाकर को कुछ आलोचको ने चार समुद्रो से आगे पाँचवाँ रत्नाकर माना है और उनका यह मानना उपयुक्त भी है क्योकि यह महाकाव्य सूक्तियो का रत्नाकर ही है ।

श्री अलक सूरि की इस 'विषमपदोद्योत' टीका का अनुशीलन करने से पता चलता है कि अलक सूरि व्याकरण-शास्त्र के निष्णात पारदृश्वा थे। इन्होने अपनी टीका मे स्थान-स्थान पर दुरूह शास्त्रार्थ खडा करके अपने बुद्धिवैशारद्य का अनुपम परिचय दिया है। ये अलङ्कारशास्त्र के धुरीण आचार्य तो थे ही निरुक्त-शास्त्र का भी तलावगाहन किया था । योगविषयक इनकी दृष्टि समाधिसिद्ध थी, वेदान्त के पावन-रहस्यो मे ब्रह्म-रस का पान करने वाले, प्रकृति-पुरुष के विवेक मे पूर्ण साख्याचार्य तथा न्याय-शास्त्र के धुरन्धर मनीषी थे। इन्होने भरतमुनि के नाट्य-शास्त्र मे जो निष्ठा एव प्रतिष्ठा प्राप्त की थी, उससे पता चलता है कि आजकल के नाट्याचार्यों के यही अग्रिम आचार्य थे ।

विविध दीक्षा-व्रतो से वाग्देवतावतार राजानक मम्मट ने अपने सकल मल-पटल को स्वच्छ कर दिया। अपने चिदानन्द स्वरूप को प्राप्त करके अलङ्कार-शास्त्र के कानन-यात्रियो को काव्य-प्रकाश दे दिया पर 'काव्य प्रकाश' जरासध के शरीर जैसा दुर्घट हो गया क्योकि आचार्य मम्मट के रस-सिद्ध कर-स्पर्श का सौभाग्य जाता रहा।

राजानक अलक सूरि रसायनाचार्य बनकर आए और मम्मट के इस सुरभित आम्र–शिशु पर अपनी 'कलम' चढा दी। अब यह 'काव्य-प्रकाश' एक 'कलमी-आम-सा' सुस्वादु देकर एक युग-वृक्ष बन गया है। यह महान् मालिक (माली) अलक सूरि का कार्य है। इस महान् उपकारी ने कही भी अपना नाम नही जोडा, कही भी मम्मट का मार्ग नही छोडा। अपने भाव-गर्भी रहस्य को दूध-पय-मिश्रण से सुरस कर दिया। ऐसा तप सिद्ध, ऐसा निर्मम टीकाकार, जहाँ आवश्यकता पडी मम्मट जैसी कारिका और वृत्ति बना दी तथा तदनुरूप ही उदाहरणो से काव्यप्रकाश की भव्य प्रतिमा को सजा दिया। किसी को यह पता ही नही चलने दिया कि यह मूर्ति जुडी हुई है और इसके निर्माता दो शिल्पी हैं।

अलक सूरि की इस रचना-विदग्धता से एक ओर तो यह पता चलता है कि इनके हृदय मे कितना सौष्ठव था, साथ ही श्री मम्मट के प्रति कितनी गहरी इनकी आस्था थी। युग-युग जिओ महापुरुष ! हमारे नितान्त तमोमय हृदय मे दीपदान करते रहो।

यद्यपि भाषा की सम्पन्नता के लिए व्याकरण-शास्त्र बहुत ही उपयोगी है फिर भी काव्य-करण एव समीक्षा के लिए अलकार-शास्त्र मे नैपुण्य अवश्य आना चाहिए। इस चारुता के ही कारण शब्दार्थ-सम्बन्ध को काव्य-पद से निर्वाहित किया गया है।

राजानक अलक सूरि इस दृष्टि से परम-मर्म तक पहुँचे हुए समीक्षक है। 'हर-विजय' के मगल-श्लोक को ही ले—

कण्ठश्रियं कुबलयस्तबकाभिराम —
दामानुकारि विकटच्छविकालकूटाम् ।
बिभ्रत्सुखानि दिशतादुपहारपीत—
धूपोत्थधूममलिनामिव धूर्जटि र्वः ॥

(१–१)

यहाँ पर इनकी टीका है—सुखानि श्रेयासि वितरतु। सुखानि शोभनानि स्वकार्य-क्षमाणि अविषयापवर्तीनि खानि इन्द्रियाणि दिशतात् सम्पादयतु। कुबलयस्तबकै नीलोत्पल-गुच्छैरभिराम चारु यद् दाम स्रग्दाम तत्तुल्यो विकटच्छविर्बहलकान्ति । उपहारेषु पूजासमयेषु भक्तजनदयया पीतो यो धूपधूमस्तेन मलिनामित्युत्प्रेक्षा। कण्ठश्रियम्। कुबलये भूमण्डले ये स्तवका स्तोतारस्तेषाममभिरामस्याभिलषितस्य दामा दाता। स्तवका इत्यत्र स्तौतीति स्तवोऽजन्त । स्तव एव स्तवक । अनुकारि विकटच्छविकालकूटा स्रग्दाम तत्तुल्यो विकटच्छविर्बहलकान्ति । कालकूटो विष यस्या—स्तथाविधा कण्ठश्रियधारयन्। कीदृशी कण्ठश्रियम् ? अनुका शृगारिण, तेषामरि काम, तथा विकटच्छवि भीषणकान्ति र्य. काल, तयो कूटा दाहिकाम्। उपहार हारसमीपे य पीत कपिशोधूप सतापोऽर्थाद्—हारोरगफूत्कृताग्निसम्बन्धी तदुत्थेन धूमेनेव मलिनाम्।

इस प्रकार टीका के प्रारम्भ में ही श्री अलक सूरि ने अपनी नवनवोन्मेषशालिनी बुद्धि-विभूति का रसाधारण होते हुए भी असाधारण परिचय दिया है।

अर्थ—साधुत्व को ही दृष्टि में रखकर कवि तदनुरूप सिद्धशब्दों का अनुप्रयोग करते हैं। यहाँ पर टीकाकार को उस साधुत्व का प्रज्ञापन देना होता है जो कि उसके अन्तराल में सीप मे मोती-सा चमक रहा है। निरन्तर ऐसा अध्यवसाय करने पर उस मानव टीकाकार का भी हृदय परिमार्जित एवं समृद्ध हो जाता है। क्षुधित व्यक्ति के लिए भोजन की भाँति अर्थोपासना तथा विविध-विज्ञान की प्राप्ति के लिए सतत उत्कण्ठित रहने वाले श्री अलक सूरि के सम्बन्ध मे यह कहना नितान्त आवश्यक है क्योंकि इनकी टीका के अनुशीलन से एक अच्छी टीका के लिए सम्भावित गुणों की प्राप्ति होती है और आदर्शभूत टीका के लिए प्रामाणिक आधार प्रस्तुत होता है।

श्री अलक सूरि की ग्रहण-बुद्धि के मर्म का प्रामाणिक आधार निम्न उदाहरणों से स्पष्ट हो जाता है:

आश्रित्य शीतरुचिना सकलेन जाति—
सामान्य मुचितवता नयनाम्बुहर्षः ।
आनन्द भार भरनम्भरता व्यधायि
तत्पक्षपातरत्नसाविव लोचनानाम् ॥

(२०—२७, हरविजय)

अर्थात्, जातिरूप सामान्य समानो धर्मं। गुणक्रियासामान्ययोरपि सम्भवादुभयपदप्रयोग। अत्रिनेत्रादुद्गत शशी न तस्यैव सुतत्वादानन्दकर, अपितु नेत्रजातिमिवाश्रित्य सर्वमेव नयनजातमावर्जयत्।

अविपाल विभाव सूचितत्त्व
वधदुद्दीपित मीनकेतु चक्षुः ।
नियमावधमुख्य चित्रभेद
स्फुट शृंगाररस प्रबन्धकल्पम् ॥

(१५—४६)

विभावसुरग्नि। तस्या विपक्षस्य स्फीतस्योचितत्त्वम्। बिभ्रत्। उद्दीपित ज्वलित कामो येन। अतश्च बहुभि संभोगप्रथमाभिलाष विप्रलम्भादिभि भेदै प्रसिद्धस्य शृंगाराख्यस्य रसस्य यः प्रबन्धो नाटकादौ निवेशनं तत्सदृशम्। बध्यमानोऽपिशृंगार. सन्निहितै विभावैरालम्बनोद्दीपनरूपैः कारणै. सूचितत्त्वं प्रकटतां वत्ते। यदुक्तम्—

विभावानुभाव व्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्ति' उद्दीपितश्च समेधित कामो येन ।

आसां प्लाभि स्वच्छ लावण्यकान्ति
ज्योत्स्नापूरापह्नुतान्यप्यशेषम् ।
छायानुच्चं प्रार्थमानानि तासां
हैमे पाण्डून्यन्वमीयन्त वर्णैः ॥
(१८–२)

अर्थात्, लावण्य सहिता कान्ति लावण्यकान्ति । हैमं स्वर्णमयं विकारे 'प्राणिरजतादिभ्योऽञ्' ५–३–१५४ । हेमशब्दो रजतादिषु न पठ्यते, इति चेत् तर्हितन्नापठितोऽप्युपसख्येय । हेमशब्दस्य बहुधा शिष्टप्रयोगदर्शनात् । दृश्यते यथा जातिषु त्रिफला शब्द । अणि तु 'अन्' ६–४–१६७ । इति प्रकृतिभावे हैमनै रिति स्यात् ।

मुष्णन्तं जीवितधनं स व्यंसकुसुमालकम् ।
जघान भर्त्ता देहार्धं सव्य सकुसुमालकम् ॥
(४३–२२२)

अर्थात्, जीवितव्यमेव धन मुष्णन्त रिपु स भगवान् जघान । विचित्रा असकौ स्कन्धभुवि शोभमाना माला यस्य । सकुसुमा इवालका इचूर्णकुन्तला यस्य ताडृशं सव्य वाम देहार्ध भर्ता धारयिता ।

गराणारोरगोग्रोरा गौरीरागी गुरु गिराम् ।
गौरागुरुगिरीरागो गौररे गुंदरोगरुक् ॥
(४३–२३८)

अर्थात्, गरस्य विषस्यागाराणि गृहाणि ये उरगोस्तैरुग्रमुरो वक्षो मध्यभागो यस्य । गौर्यां रागी व्यसनी वत्सलश्च । गौरा शुभ्रा अगुरव, तरुभेदा, यासा तथा विधा गिरीरा पर्वतभुव गच्छति श्रयति य । अरे=गौं वज्र इव । हिमवा स्तु द्विषो गौ, तत्र पलाय्या वस्थानास्पदम् । गुरून् महतो भक्ताना रोगान् रुजति य ।

यो भाति प्रत्ययोत्कर्षाक्षयज्ञानलाभया ।
इथा च सदया ध्वस्त दक्षयज्ञानलाभया ॥
(४३–२४०)

अर्थात्, अक्षयो ज्ञानलाभो यस्या । ध्वस्ता दक्षयज्ञे ऽनलस्याभा यया ।

दुर्मोचया वपुस्तस्य मायया वसितोषिता ।
रणे शौर्यगृहे क्रौर्यमायया वसि तोषिता ॥

(४३–२४२)

अर्थात्, माययाऽवसिता ज्ञाता रणे घोषिता तच्चमू क्रूरतामाययौ । असिभिस्तोषिता ह्लादिता ॥

अर्थात्, नैर्गुण्यमकिंचित्करत्वमाश्रयतो गजस्य केनचिद्वीरेण अदन्तता प्रत्यज्ञायि । दन्तशून्यो-ऽयमिति प्रतिज्ञा कृता । अन्यथा कथं युद्धयेत् ? पिबे रिव । यथा पिबादेशस्य लक्ष्ये गुणाभाव भजतोऽदन्तता अकारान्तता पाणिनिना प्रतिज्ञाता । अन्यथा हि लघूपधत्वाद् गुण स्यात् —

प्रत्यज्ञायि प्रसरता वीरेणाजावदन्तता ।
नैर्गुण्यमाशुभजत पिबे रिव पिबाविन ॥

(४३–१०)

अभावि रभसान्नाक स्त्रिया मानवतां तया ।
रणधूल्या बधे तस्या स्त्रियामा नवतान्तया ॥

(४३–१३)

अर्थात्, मानवता शूराणा रभसोऽभिलाष स्तस्मात्तया नाकस्त्रिया भावितम् । श्रितोत्कण्ठितया स्थितम् । ल्यब्लोपे पचमी । तस्याश्च तदभिसरणोद्यताया रणधूल्या त्रियामा रात्रिरादधे । कृता । तयेति वा हेतुतृतीया । अहमनया वृतोऽहमनया वृत इति यस्तद्धेतुक स्तेषा रणस्तद्धूल्योत्यर्थं । नवेन स्तुत्या तान्तया खिन्नया शूराणा पुन पुनश्चाटुकरणात् ।

उपसर्गा इव गताः क्रियायोगेन शून्यताम् ।
आस स्तस्य हृता बाणैरप्राप्तगतिसंज्ञकाः ॥

(४३–४६)

अर्थात्, तस्य बाणैराहता दैत्या अप्राप्ता गति गमन सज्ञा च चेतना यै क्रियायोगेण च शून्यता गता । निर्व्यापारा आसन् । उपसर्गा प्रादय इव । ते हि क्रियायोगमन्तरेण गति सज्ञा न प्रतिलभन्ते । 'उपसर्गा क्रियायोगे' १–४–५९ । 'गतिश्च' १–४–६० । इति वचनात् ।

रथसिन्धु सुमनसां तदानीमुत्तितीर्षताम् ।
सारिकासकुलकुम्भकवन्ति गौरिवाभवत् ॥

(४३–६२)

अर्थात देवानाम नौरिव सा देवी अभवत । तथैव तेषां ततो निस्तारित्वात् । अरित्रासकृत् अरीणां भयजननी । अरित्रस्य च केनिपातनस्यासकृत् क्षेपकरण यस्याम् ।

नामाच्छ तिरिवाहीना सदोंकारतया न या ।
बभाहि भर्तु संग्रामसदोऽङ्कारतया नया ॥
(४३–५३)

अर्थात् भतु शिवस्याङ्क आरतया क्रीडितयाऽनया संग्रामसदोऽगाहि । विलोडितम् । या श्रुतिरिव न नाभात् । अपितु शुशुभे एव । श्रुति वेदं । सदोंकारो रणप्रवेशसमये पाठकाले यस्य तद्भावेन अहीना सहिता ।

नतलोकहितक्रिया सधाना
नवमा यस्य वितांसता सवस्त्र ।
युधि शक्तिमसौ द्विषां स्म हतु'—
नवमायस्यति तां सतां सवस्त्र ॥
(४६–६)

अर्थात् यस्य विभो नत लोक प्रति हितक्रिया असमाना लोकातीता अनवमा च सर्वोत्कृष्टा । असौ युधि शक्ति वितासता विस्तारयितुमिच्छता सतामरीणा तां शक्तिमुपहतु नव कृत्वा आयस्यतिस्म सप्रयत्नोऽभूत् । सवस्त्र शोभनायुध । सदासि च समास्त्रायते रक्षति य ।

स सेनया जगन्मनोमृदुर्वशीकया जित· ।
अविस्खल स्तदा रुषामृदु वशी कया जित ॥
(४६–५३)

अर्थात जगता मन प्रमाथिनी उवशी यत्र तादृश्या सेनया कुमार कया जित ? न कया चित् । रुषा कोपेन अमृदु क्रूर । वशी जितेंद्रिय । आजित समरे । आद्यादित्वात्तसि ।

मणि शतकर भासुरांगनानां दितिज चमूपद मान संसद स ।
अकृत च समर सुराङ्गनानामतनु दधच्छुचि मानस सदस ॥
(४६–५७)

अर्थात स हरि दितिजानां चमूभि युंज्यमाना संसदा सभा यत्र तादृश समर धारयन्नप्सरसां मानसमतनु कृत्वा शुचि प्रीत्या विशदमकरोत् ॥

जेता वेगी स्तोकमा वायवीयान्
वृत्राराते वैद्धभावो यवीयान् ।
चतुरा दुस्सहस्तुति चाणूरपीडा:
प्रथमतोऽसौ इत्थचाणूरपीडा: ॥
(४६–५८)

अर्थात्, वृत्रारातेरिन्द्रस्य यवीयाननुजो विष्णुरचूरपीडा (अपि ईडा.) स्वल्पा अपि स्तुतीरा: कर्ण्याहिष्यत् । यतस्ता. बद्धभावा: । साकूता. । असौतु वायवीयान् वेगान् जेता वायोरपि चतुरपति. । तीव्रमा दुस्सहस्तुति: । चाणूराख्यस्य दैत्यस्य पीडा: प्रथममेव विधाता ॥

रणे शिवाभिरमनागमितं चकले वरम् ।
अद्ययतास्थिशेषत्वं, अमित. च कलेवरम् ॥
(४३–११)

अर्थात्, अमितं स्थूल वरं चोत्कृष्टं कलेवरं शरीर शिवाभिरमनाक् चकले संख्यातम् । 'कल शब्द संख्यानयो:' । अस्थिशेषत्व यमितं चाख्यत । मांसार्थितया विचारितम् ॥

स गुणं रणेष्वपि यश: पटं सततोऽमृदुवायसेषु. समदं रसं गत: ।
रुचिमान् धनुर्मुखरयन् द्विषच्चमूमुद् उवाय सेषु समदं रसं गत: ॥
(४६–३३)

अर्थात्, अमृदुवायसेषु क्रूरकाकेषु रणेषु स देवो यश पटम् उवाय । स्यूतवान् । वेञ्, तन्तुसन्ताने । गुणा शौर्यादय:, तन्तवश्च । समदो मदेन सह वर्त्तमान: । रस यतो रणराव प्राप्त । असगतोऽप्रशंक्त्या अवहेलयैव सेषु सशर च धनुश्चालयन् । अरिसेना मृद्नाति य: ।

महाजिगोष्ठो प्रतिबद्धसौष्ठवं विदग्धलोकैरिव कर्णशालिभि: ।
तवाहवे सत्कविकाव्यपायिभि दधे मुखश्री: पृतनातुरंगमै: ॥
(४६–५२)

अर्थात्, तुरगा कर्णशालिन: सुप्रमाणकर्णत्वात् । विदग्धास्तु सदसदर्थविचारणात् । सत्कविकाभिरव्यपायिभि. सहितै । सत्कवीना च काव्यं पिबन्ति ये तै: ।

इसके अतिरिक्त अलक सूरि के शास्त्रीय गहन-चिन्तन के परिणामस्वरूप इनकी कुछ अपनी भी अनुभूति और मान्यता है, जो विचार-विमर्श करने योग्य और स्वीकार करने योग्य भी है। अलक सूरि कीर्ति और यश में सीमाङ्कन करते हुए कहते हैं कि दान आदि के कारण होने वाली प्रशंसा कीर्ति है और शौर्य आदि के द्वारा उत्पन्न प्रशस्ति यश

कहलाती है (१३-४३)। कु धातु पिबति अर्थ में भी है। बंधु करोति पिबतीति मधुकृद् भ्रमर (१-२१)। सह आरामि धारामि वर्तते इति सारः (१-१)। सह अरै शृङ्गै वर्तते इति सार। इसी प्रकार पान-पात्र को चारी २६-५, मधु-कलश के लिए करक २६-६, कर्करी भी २६-२६, चषक के लिए कोष २६-४, मद्य-थाली के लिए आलुका, मधु-कलशी, कलिका और आवरवी भी, शरम्=पानी, शरः बाण (२२-४४)। शम्पा रशना, विद्युत् भी ५-२३, बर के लिए नड्वल, सूकर के लिए मुल-लाङ्गल, १२-४७, प्रचलाकी तथा नीलकन्धर मयूर के लिए (१३-२२), शौटीर्य मद के लिए १४-३८, हस्ती के लिए पीलु, काक के लिए मौकुलि तथा द्रोण १४-१४, नारिकेल के लिए कूर्च-केसर १२-२४, स्वामी के अनुवर्ती पुरुष के लिए धवल (धव भर्तारं लान्ति गृह्णन्ति ते) १०-३, पान-पात्र के लिए शुक्ति ३०-४३, भ्रमर के लिए रसायु २६-१४, बन्दी के लिए मंख २८-३४, रुरु खूँटी या मृग के लिए, तुम्बरु बनिया के लिए, मल्लिका जूही के लिए, सुवर्चला सूर्यमुखी के लिए, प्रिय-सूचना देने वाले के लिए दिष्टि, मरिक के लिए विष्टि, जल के लिए कृपीट, शाखा के लिए लंका, गणिका हस्तिनी के लिए, विनम्र के लिए स्तोक, शावक के लिए पाक, विवाहिता कन्या के लिए राका, दया के लिए शूक, संक्षेप के लिए पुलाक, दीपक के लिए प्रतीक, हींग के लिए वाह्लीक, मयूर के लिए मेचक, स्थासक बुलबुले के लिए (बुद्‌बुद), अश्मन्तक तथा अन्तिक रसोईघर (रसवती) के लिए, नगरी के लिए उष्ट्रिका, खनित्री के लिए विशाखा, जल-निर्गमन (पनाला) को मकर-मुख, स्वभाव के लिए सर्ग, सकेत के लिए इङ्ग, सुरागृह के लिए मजा, नपुंसक के लिए पोटा, मक्का के लिए गवेधुक, आदि शब्दप्रयोग विचारणीय हैं।

राजानक अलक सूरि के मत मे अरि अदानृशील (रा दाने) को कहते हैं पर धन-हीन को भी अरि (रै धन–रयीश) कहते हैं । साथ ही अरी — (अरा अस्य सन्ति) चक्र को कहते हैं। सुदर्शन-चक्र के लिए प्रयोग हुआ है । सुन्दर चक्र वाले वज्रधर के लिए स्वरिः कहा गया है। अरि शत्रु को भी कहते हैं।

राजानक अलक सूरि की प्रतिभा सामयिक और अवसरप्राप्त विषय की विवेचना मे बहुत ही उद्‌बुद्ध थी। उनकी गहन तथा विशद टीका के आधार पर उनके प्रभावशाली व्यक्तित्व का आभास मिलता है । विवेचना-शक्ति तथा सगति लगाने की ऊहा भी उनकी अनुपम थी । शब्दगत अर्थ की गवेषणा मे गाहनिक-प्रतिभा का दिग्दर्शन मिलता है । वीर का अर्थ करते हुए वे कहते हैं— विविधम् ईरयति, विशिष्टा इरा यस्य, प्रियम्वदो मदो यस्य, इस प्रकार प्रफुल्लित-हृदय तथा सरस लेखनी से अन्वाख्यान इनकी टीका की विशेषता है। निर्दिष्ट-तथ्य की मनोहारिणी व्याख्या तो करते ही है साथ मे मूल-कृति को श्लाघनीय मर्यादा की चोटी तक ले जाते हैं । विस्तृत-ज्ञान तथा शोधपूर्ण वैदुष्य का निदर्शन इनकी टीका में अनुबिम्बित है । प्राचीन्य, दर्शन तथा सिद्धान्त-ज्ञान के लिए आनन्दप्रद सोपान इनकी टीका के माध्यम से मिलता है। अनेक अर्थों वाले शब्दों को प्रक्रिया और प्रकरण के कारण निर्धारित करते हैं । संयत और नियमबद्ध अनुभव की प्राप्ति के लिए अलक सूरि ऋषितुल्य प्रतिकृत् हैं।

टीका का कार्य वृहत्तर और प्रतिभापेक्षी है। विद्वज्जन के मानस-पटल पर वृहदाङ्कन करने योग्य सामर्थ्य के कारण ही टीका को महत्त्व मिला है। इससे कवि की दृष्टि तथा प्रवृत्ति का जन-मानस से सम्पर्क मिलता है। 'वृत्ति वर्त्तनजीवने' में जीवन का अभिप्राय ही है कि स्वस्थिति योग्य उचित व्यापार हो क्योंकि 'जीव बल प्राणधारणयो.' ऐसा अनुशासन है। यह जीवन अहंकारवान् पुरुष के सामर्थ्यातिशय से ही प्राप्त होता है। इसी हेतु आक्षेपो का समाधान भी टीकाश्रित कार्य है।

एक टीकाकार के ही मर्म-विषय को लेकर गवेषणा-कार्य प्रारम्भ करते हुए हमें यह प्रेरणा-किरण साथ रखनी चाहिए कि टीका की आधार-शिला क्या हो? विश्वास और उत्साह के साथ जिन मान्य टीकाकारो को अपने कृतित्व की उपलब्धि मिली है, उसके रहस्य तथा स्वाभिमान का भी वर्गीकरण के साथ हमे मूल्याङ्कन करना है। उन सम्भावना-ग्रन्थियो पर भी विचार करना चाहिए जिनके कारण टीका-सिद्धान्त उन्मुक्त तथा पल्लवित हुआ है।

संस्कृत की शब्द-सम्पदा विशद है, गाहनिक-बुद्धि की अभीप्सा करती है। प्रत्येक शब्द अपने अन्तराल मे अनेक धातु छिपाये हुए है। कहाँ पर कौन धातु अधिक स्पष्ट है और कहाँ पर कौन धातु छिपकर अर्थ-सुषमा पर किरण का विकिरण कर रही है, यह अर्थ-द्रष्टा टीका-ऋषि से ही सम्भव है। 'काम' शब्द कामना-वाचक तथा कार्य-वाचक कैसे है? सुषमा का अर्थ सौंदर्य से अभिन्न क्यो है? सु+सम मिलकर सुघड शरीर के लिए वाचक बन कर सौंदर्याभिव्यक्ति मे सहायक किस प्रकार है? क्यो कनक का अर्थ स्वर्ण है फिर धतूरे के अर्थ को क्यो प्रकट करता है? फिर कन्या मे कौन-सा कनकत्व या धुस्तूरत्व देखा गया?

राजनीति, धर्म, दर्शन, साहित्य, कला और लोक-जीवन की बहुमुखी समस्याओं एव मान्यताओ के प्रति रससिद्ध कवि के समान ही टीकाकार में भी सजगता होनी चाहिए। पुस्तक को जानबूझ कर जटिल या विस्तृत नही करना चाहिये।

संकेत में दिये गये सन्दर्भ अतीव उपादेय तथा मेघावी छात्र के लिए गवेषणा के बीज बनते है। सम्बद्ध धरातल पर ही गवेषणा के लिए प्रारूप सम्पन्न किया जा सका है। पुरातत्त्व साहित्य एवम् अनुश्रुतियो को भी प्रसगानुसार यथासम्भव यथास्थान समावेश अवश्य करना चाहिये। इससे विषयगत विवरण पाने मे ऐतिहासिक सामग्री मिलती है। कहीं-कहीं टीकाकार मूलवृत्ति की व्याख्या करते-करते अपनी निजी सम्मति लिखने लगते हैं जो कहीं-कहीं मूल लेखक के विपरीत पडता है। न्यास में जिनेन्द्र बुद्धि (१ – १) कहते है कि मूल-वृत्ति के विपरीत व्याख्यान उचित नही है। अर्थ-शास्त्र के प्रणेता आचार्य चाणक्य का स्वयं ही टीका लिखने का यही अभिप्राय अनुदित होता है।

टीकाकार व्यक्ति को चाहिये कि वह काव्य-रस को ग्रहण करने में पूर्ण समर्थ हो। वाल्मीकि रामायण में ऐसे लोगो के लिए 'काव्य-कल्पवित्' (उत्तरकाण्ड ९४-७) कहा गया है। इसका अभिप्राय यह भी निकलता है कि टीकाकार को काव्य-सौंदर्य की परीक्षा मे पूर्ण सिद्ध होना चाहिये। मल्लिनाथ मे इसी कारण काव्यवित् में 'वित्' शब्द को दो धातुओ से निष्पन्न माना है— विद ज्ञाने, विद-विचारणे, अतएव उन्होंने अपने अभिप्राय को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि 'काव्य कर्तुं जानन्ति ते काव्य-रसिका., काव्य विचारयितुं ये जानन्ति ते काव्य-परीक्षका.। (एकावली—तरला टीका, भूमिका)।

शास्त्र-दीप से जिनका मार्ग आलोकित है, जिनकी बुद्धि अग्निसशोधित स्वर्ण-श्री के समान निरन्तर उत्कर्ष को प्राप्त है। वे मानते हैं कि अगौरव के परिहार तथा गौरव के प्रतिपादन की ही दृष्टि से टीका लिखी जाती है। शकित, सभावित, समारोपित प्रश्नो का समाधान भी अपेक्षित रहता है। कही-कहीं कवि की भूल पर भी तर्जनी-विक्षेप से नहीं चूकता—

स्पृशति तिग्मरुचौ ककुभः करं—
दयितयेव विजृम्भिततापया ।
अतनुमान परिग्रहया स्थितं
रुचिरया चिरयापि दिनश्रिया ॥

(३-३७)

अर्थात्, करा॰ पाणयोऽपि। ताप: खेदोऽपि। मान दैर्घ्यमभिमानश्च चिरयायीनि दिनानि ग्रैष्मिका वासरा:। अत्र तिग्मरुचे ककुभा च कामिता प्रतीयते। लिंगविशेषोपादानात्। यथा सरले सह वासरश्रिया निभृत क्वापि गत. स भास्कर॰ । वद तेन विनाऽब्जिनी कथ क्षणदामद्य नताङ्गि नेष्यति । एव दिनश्रियोऽपि नायिकात्वप्रतीतौ यथोक्तमेव समवतीति दयितमेत्युपमानपदमपुष्टार्थ मिति सहृदयाः।

पुराने बहुत-से कोश, गुरुजन, विषयगत शास्त्र एव परम्परा के सम्प्रदाय-शास्त्रो के माध्यम की साक्षी मे अनवरत रहते हुए स्वयम् अलक सूरि भी एक प्रामाणिक आचार्य की कोटि मे आते हैं। इनके सम्मत॰ तलावगाही व्यक्तित्व के कारण पता चलता है कि नाट्य-शास्त्र, मणि-शास्त्र, दशरूपक, अलकारशास्त्र, व्याकरणशास्त्र, निरुक्त, पिंगल, वैदिक-साहित्य एव शिवागमशास्त्र के महारथी आचार्य थे।

महाकवि रत्नाकर ने बहुत-से अप्रचलित शब्दो द्वारा यमक-साधना मे सिद्ध-श्लोको की रचना की है। ऊपर के उद्धरणो से कहा जा सकता है कि यदि इनको अलक सूरि जैसा विवेचक नही मिला होता तो इनका काव्य महान् होते हुए भी दुरूह और अपरिचित हो जाता।

कुछ लोग अलक सूरि का नाम अल्लट सूरि लिखते है जैसा कि काव्यप्रकाश टीका की भूमिका मे तथा परिकरालंकार के अन्त में वामनाचार्य ने भी लिखा है । हो सकता है बहुत-से काश्मीरी पडितो का नाम टकारान्त देखकर (मम्मट, जैयट, कैयट, उव्वट, रुद्रट) इनका भी नाम अल्लट मान लिया गया हो, पर ऐसा नही है । 'हर विजय' महाकाव्य के प्रत्येक सर्गान्त मे इन्होने 'राजानक जयानकसूनोरलकस्य कृतौ' लिख कर अपना नाम अलक ही दिया है। आनन्द कवि ने अपनी निदर्शना टीका मे भी इनका नाम अलक ही माना है—

कृतः श्रीमम्मटाचार्यवर्यैः परिकरावधिः ।
प्रबन्धः पूरितः शेषो विधायालकसूरिणा ॥

काव्यप्रकाश के अन्तिम सन्दर्भों मे अलङ्कारो का क्षेत्र, सीमाङ्कन और साधक-बाधक हेतुओ से अलकार की निश्चय-सिद्धि का जो प्रयास अलक सूरि ने किया है वह बहुत चिन्तन, समीक्षा एव अनुभूति का परिणाम है। अलक सूरि का निष्कर्ष सान पर चढे मणि के समान प्रसन्न एवं रमणीय है।

निकष पर

(पुस्तक समीक्षा)

पुस्तक का नाम — पत्रकारिता के परिप्रेक्ष्य

लेखक — जगदीशप्रसाद चतुर्वेदी

प्रकाशक — साहित्य संगम, १००, लूकर गंज, इलाहाबाद-२११००१

पृष्ठ संख्या — २२२

मूल्य — ७५ रुपये

'पत्रकारिता के परिप्रेक्ष्य' सुप्रसिद्ध पत्रकार तथा विचारक श्री जगदीशप्रसाद चतुर्वेदी की साहित्य संगम, इलाहाबाद से ताजी प्रकाशित पुस्तक है। भारत सरकार ने नवप्रतिष्ठापित 'भारतेन्दु हरिश्चन्द्र पुरस्कार' से इस रचना को सम्मानित कर इसके महत्त्व की ओर हिन्दीजगत् का ध्यान आकृष्ट किया है। यो तो हिन्दी का पहला पत्र कलकत्ता से ३० मई १८२६ को 'उदन्त मार्तण्ड' नाम से प्रकाशित हुआ पर पश्चिमोत्तर प्रदेश से प्रकाशित पहला हिन्दी दैनिक 'बनारस' अखबार था। प्रारम्भिक हिन्दीपत्रो की विशेषता यह थी कि इनका प्रकाशन बगला या उर्दू के साथ हुआ अत इनकी भाषा पर भी इन भाषाओ का प्रभाव था। हिन्दी की धज के साथ यदि कोई पत्र निकला तो १८६८ मे 'भारतेन्दु का कविवचन सुधा' निकला। कविता का पत्र होते हुए भी तत्कालीन राजनीतिक और सामाजिक सन्दर्भों से जुडा होने के कारण यह पत्र हिन्दीक्षेत्र की समस्याओं का पूर्णरूप से प्रतिनिधित्व करता रहा। बाबू बालमुकुन्द गुप्त ने इस पत्र के सम्पादक के बारे मे लिखा 'यद्यपि हाकियो मे बाबू हरिश्चन्द्र की बडी प्रतिष्ठा थी, वह आनरेरी मजिस्ट्रेट किए गए थे तथापि वह निडर होकर लिखते रहे और सर्वसाधारण मे उनके पत्र का आदर होने लगा।' भारतेन्दु इस प्रकार वर्तमान हिन्दी पत्रकारिता के दिग्दर्शक सिद्ध हुए। इस प्रकार सरकार ने यदि भारतेन्दु पुरस्कार पत्रकारिता के लिए स्थापित किया तो अच्छा किया और यदि इस पुरस्कार के योग्य कोई पत्रकारिताविषयक कृति चुनी गई तो यही सोचकर कि इस कृति का स्वर भारतेन्दु की तरह राष्ट्रीयता से ओतप्रोत और निर्भीक होगा। चतुर्वेदी जी पत्रकारिता के इस तेवर के धनी है और उन्हे दिया गया पुरस्कार हिन्दी पत्रकारिता के प्रति सम्मान का सूचक है। चतुर्वेदी जी १९४१ से ही हिन्दी पत्रकारिता के साथ जुडे है। पत्रकारिता-आन्दोलन से भारतीयस्तर पर जुडे रहने के कारण वह अखिल भारतीय पत्रकारो और हिन्दीतर भाषा-पत्रों से सम्पर्क साधे रहे। अमरीका, मैक्सिको, क्यूबा, ब्रिटेन, फ्रास, सोवियत सघ, जापान, आस्ट्रेलिया आदि देशो की पत्रकारिता का भी उन्होने निकट से अध्ययन किया। १९६९ मे बर्लिन मे हुए अन्तर्राष्ट्रीय पत्रकार सगठन के सामाजिक आयोग के वह उपाध्यक्ष बने, अत: देश-विदेश की पत्रकारिता और उसके आयामो का उन्होने गभीर अध्ययन किया। यह पुस्तक उनके इन्ही दीर्घकालीन अनुभवो का परिणाम है।

इस पुस्तक मे २६ निबन्ध है। पहले ब्रिटिश, स्वीडिश, अमरीकी, जापानी पत्रकारिता पर विस्तार से लिखा गया है और फिर अन्तर्राष्ट्रीय पत्रकार आन्दोलन तथा

प्रेस की नई प्रौद्योगिकी पर प्रकाश डाला गया है। चतुर्वेदी जी का कथन है कि स्वीडन, पत्रकारिता की दृष्टि से आगे है। हंगेरियन पत्रकार संघ की उच्चस्तरीय क्षमता अधिक है जिसके कारण अन्तर्राष्ट्रीय पत्रकार संगठन ने इसे पत्रकारो का एक स्कूल चलाने तथा उच्चकोटि के मुद्रण की एक पत्रिका प्रकाशित करने का भार सौप रखा है। स्वीडन के पत्रकारिता उद्योग से एक बात सीखी जा सकती है कि बड़े पत्रो के साथ छोटे पत्र कैसे जीवित रह सकते हैं ? सरकार ने वहाँ कानून पास कर बड़े पत्रो पर शुल्क लगा दिया है। उसी राशि से छोटे पत्रो को सहायता दी जाती है। पत्रकारो के आचरण के लिए वहाँ प्रेसलोकायुक्त की स्थापना भी हुई है। अमरीकी समाचारपत्रो की यह विशेषता है कि उनका प्रचार मुख्यतया स्थानीय है। प्रति व्यक्ति समाचारपत्रो की खरीद तथा गणना की दृष्टि से जापान आगे है। इस तरह की कई नई जानकारी पुस्तक मे उपलब्ध हैं।

इस पुस्तक की एक विशेषता यह है कि इसमे विश्व-प्रचार सदर्भों मे हिन्दी पत्रकारिता के स्वरूप और भविष्य पर प्रकाश डाला गया है। 'विश्वमानवचेतना मे हिन्दी संचारमाध्यम की भूमिका' निबन्ध इस दृष्टि से पठनीय है। चतुर्वेदी जी का कहना ठीक है कि प्रारम्भ से ही हिन्दी लेखक किसी एक प्रात या विचारधारा तक सीमित नहीं रहे। मुद्रण की दिशा मे भी हिन्दी का सार्वभौमिक रूप था। हिन्दी के पहले टाइप पुर्तगाल और हालेड मे ढाले गए। मुद्रण के बाद तो हिन्दी को सार्वदेशिक रूप मिल गया। बगाली और मराठी हिन्दी सम्पादको के योगदान को भुलाया नही जा सकता। श्यामसुन्दर सेन, अमृतलाल चक्रवर्ती, विष्णु पराडकर, लक्ष्मीनारायण गर्दे, माधवराव सप्रे हिन्दी के पितामह पत्रकार है। आज भी हिन्दी मे ऐसी पत्रिका की जरूरत है जिसमे ससार की साहित्यिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक गतिविधियो का विश्वव्यापी परिचय उपलब्ध हो तथा वह विश्व के किसी भी कोने मे उपलब्ध हो सके। 'पत्रकार का दायित्व' इस पुस्तक का सवेदनशील अध्याय है। इसमे पत्रकारिता की पेशेवर नैतिकता, तथ्य-परक वास्तविकता और राष्ट्रीयनिष्ठा, सामाजिक-नैतिक मूल्यपरकता, मानवीय अधिकार रक्षा, उत्पीडन विरोध, पीतपत्रकारिता आदि पर विभिन्न पहलुओ मे विचार किया गया है। यह निष्कर्ष उचित ही है कि यदि पत्रकार अपना काम करते समय आत्म-निरीक्षण को स्थान दें तो समाचारपत्र और सरकार दोनो ही सुरक्षित रहेंगे। यह बात इसलिए भी महत्व की है कि भारत मे अभी कोई सर्वमान्य आचारसहिता नही है।

पुस्तक के अन्तिम चौदह अध्याय हिन्दी-पत्रकारिता के इतिहास तथा प्रवृत्तिपरक और प्रकाशनसम्बन्धी समस्याओ पर केन्द्रित हैं। हिन्दी पत्रकारिता की विविध प्रवृत्तियो का खुलासा किया गया है। पत्रकारिता की योग्यता और पूँजीनिवेश की क्षमता का विश्लेषण कर सम्पादन-प्रकाशन की समस्याओ पर दृष्टिपात किया गया है। प्रतिरक्षा, कृषि, उद्योग, सिनेमा, परिचर्चा, साहित्यिक रपट, खेलकूद, राजनीतिक घोटाले आदि बिन्दु हिन्दीपत्रकारिता को लोकप्रिय बनाने में मुख्य कारण सिद्ध हुए हैं। पहली पत्रकारिता से आधुनिक हिन्दी पत्रकारिता का यह नवीन आयाम है जो हिन्दीपत्रो के आर्थिक ढाँचे

को प्रभावित करता है। चतुर्वेदी जी का यह कथन भी उचित है कि हिन्दीपत्रों के सम्पादकों को हिन्दी की परम्पराओं से परिचित होना चाहिए। पत्रकारिता का क, ख, ग न जानने वाले भी यदि पूँजीनिवेश के कारण मालिक हैं तो सम्पादक भी उन्हे ही होना चाहिए, यह प्रवृत्ति घातक है। 'आज पत्रकारो मे, विशेष तौर पर देशी भाषा के पत्रकारो मे जो यह सत्रास की भावना पैदा हो गई है कि वे कितने ही अच्छे पत्रकार क्यो न हो, वे वर्तमान व्यवस्था मे किसी पत्र के सम्पादक नही हो सकते जब तक कि वे किसी मालिक के चापलूस न हो या खुद मालिक न हो, यह व्यवस्था दूर होनी चाहिए।' पत्रकारिता आज शगल नही, एक उद्योग है। अत जनहित और मनोरजन के साथ अर्थ-सचय पत्रकारिता का लक्ष्य बन गया है। ऐसी स्थिति मे अखबार वही चला पाते है जिनके पास पर्याप्त पूँजी है और यदि पूँजी उधार लेकर लगाई गई है तो उसका परता डाल कर उसे चुकाने की योग्यता भी रखते है। अत पत्रकारिता की नित्यनवीन उपलब्ध तकनीकों की जानकारी के साथ-साथ उसके ज्ञान-विज्ञान बोध की आवश्यकता पर भी बल दिया जाना चाहिए।

कहना न होगा कि चतुर्वेदी जी की यह कृति भिन्न-भिन्न समयो पर लिखे गए निबन्धो का ऐसा श्रृखलाबद्ध प्रकाशन है कि इसमे पुस्तक की पूर्ण अन्विति पाई जाती है। पत्रकारिता विधा, इतिहास, तकनीक, चिंतन-माध्यम और विचार-जगत् की दृष्टि से भी इस पुस्तक मे नई जानकारी मिलती ही है, भारतीय और विदेशी पत्रकारिता के स्वरूप और सम्भावनाओ का परिचय भी प्राप्त होता है। सूचनाव्यवस्था के विविध आयामो और मनुष्य की सोच मे लाए जाने वाले परिवर्तनो के परिप्रेक्ष्य मे भारतीय पत्रकारिता के विविध पहलुओ पर भी इस रचना मे प्रथम बार प्रकाश डाला गया है। यह पुस्तक शैक्षणिक ढर्रे की रचना नही, व्यावहारिक पत्रकारिता का दर्पण है जिसमे प्रौढपत्रकार का अनुभवी मन और उसकी प्रतिक्रियाएँ प्रतिबिम्बित हुई है। हिन्दीपत्रकारिता की समस्याओ, उद्देश्य, साधनों और वर्तमानरूप तथा भावी सम्भावनाओ पर बेबाक सवाद पढकर चित्त प्रसन्न हो जाता है। अच्छा हो हिन्दी के पत्रकारबन्धु इस पुस्तक के निष्कर्षो को अगीकृत करें। उनके सामने देशी-विदेशी पत्रकारो की गरिमामयी परम्पराएँ और सस्थाएँ इस पुस्तक के माध्यम से सामने आकर खडी हो गई है। प्रेस की नवोन्नत प्रौद्योगिकी उनके लिए चुनौती है। अधुनातन होते हुए भी हमे भारतेन्दु, प्रतापनारायण मिश्र, महावीरप्रसाद द्विवेदी, स्वामी श्रद्धानन्द और पराडकर जी की परम्परा को अक्षुण्ण बनाए रखना है।

मैं पुस्तक के लेखक श्री जगदीशप्रसाद चतुर्वेदी को इस उत्तम रचना के लिए बधाई देता हूँ। उनके प्रकाशक साहित्य सगम के सचालक से अनुरोध करता हूँ कि अब वह चतुर्वेदी जी से हिन्दी पत्रकारिता का सागोपाग इतिहास लिखवाकर प्रकाशित करें। एक बहुत बडे अभाव की पूर्ति होगी।

—डा० विष्णुदत्त राकेश